सामुदायिक विकास में प्रौढ़ शिक्षा

परिसंवाद

सिरीज़ २४

इण्डियन एडल्ट ऐजुकेशन ऐसोसियेशन
३० फैज़ बाज़ार, देहली

मूल्य आठ आने

सामुदायिक विकास में प्रौढ़ शिक्षा

परिसंवाद

सिरीज़ २४

इण्डियन एडल्ट ऐजुकेशन ऐशोशियेशन
३० फैज़ बाज़ार, देहली

मूल्य आठ आने

भूमिका

भारत के प्रौढ़-शिक्षा आन्दोलन ने आरम्भ में स्वतन्त्रता के लिए सार्वजनिक कामना से प्रेरणा पाई। प्रौढ़-शिक्षण कार्य-कर्ताओं के मन में मुख्य प्रश्न यही था कि "उस इच्छा-अभिव्यक्ति का मार्ग प्रदर्शन में प्रौढ़-शिक्षा जनता की किस प्रकार सहायक हो सकती है ? उदाहरण के रूप में, १९३९ में भारतीय प्रौढ़-शिक्षा परिषद् की स्थापना करते हुए, भागलपुर में आयोजित द्वितीय अखिल भारतीय प्रौढ़-शिक्षा सम्मेलन के अध्यक्ष डा० रूस्तम मसानी ने कहा, "हमारे सहस्रों स्त्री-पुरुष अभी भी निरक्षर तथा अज्ञान हैं। परन्तु यद्यपि वे निरक्षर हैं उन्होंने स्पष्ट रूप से व्यक्त करना सीख लिया है। ऐसे समय में हम जनता-जनार्दन को अभिव्यक्ति के साधन द्वारा सहायता प्रदान करने के अतिरिक्त और क्या सहायता उनकी कर सकते हैं।" प्रौढ़-शिक्षा के विभिन्न कार्य-क्रम पर विचार किया गया। और उनकी योजना बनाई गई। द्वितीय अखिल भारतीय प्रौढ़-शिक्षा सम्मेलन में पारित प्रस्ताव के अनुसार "साक्षरता साध्य का केवल साधन है और प्रौढ़-शिक्षा को चाहिए कि उच्चतर नागरिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक स्तर के लिए साधन अनुसन्धान करके उनका उपयोग करे। प्रस्ताव में उन योजनाओं के भी नाम थे जो देश में प्रौढ़-शिक्षा का विस्तार करेंगी। इन योजनाओं के अन्तर्गत आर्थिक विकास क्रिया-शीलन तथा कलात्मक व सांस्कृतिक कार्य-क्रम थे।

फिर भी राजनैतिक ढाँचे के कारण आन्दोलन सीमित रहा। ऐसी सरकार पर जिसका ध्यान जनता के कल्याण की अपेक्षा अन्य दूसरे उद्देश्यों पर था, कोई प्रभाव तो था नहीं। प्रौढ़-शिक्षा आन्दोलन को अपने कार्य-क्रम वहीं तक सीमित रखने पड़े जहाँ तक ऐच्छिक प्रयत्न उनको चला सकें। और जहाँ तक सहानुभूति न रखने वाली सरकार भी अनुमति दे दे। ऐसी परिस्थितियों में सम्मेलन द्वारा प्रस्तावित मार्ग पर राष्ट्रीय पैमाने पर विस्तृत कार्य-क्रम सम्भव न था।

स्वाधीनता के साथ साथ स्थिति में भी परिवर्तन आ गया। एक नवीन राज्य की स्थापना हुई और विधेय में जनता के कल्याण का उत्तरदायित्व

मान लिया गया। प्रौढ़-शिक्षा कार्य-कर्ताओं को एक अवसर ला। उन्होंने स्वयं अपने से पूछा, "हम स्वाधीनता को किस प्रकार एक वास्तविक अर्थ दे सकते हैं ?" स्वाधीनता का अर्थ उनके लिए स्पष्ट था; इसके अन्तर्गत जनता-जनार्दन स्वेच्छिक सामाजिक क्रियाओं से अपने कल्याण के प्रयत्न के लिए स्वाधीन है। प्रौढ़-शिक्षा समाज-शिक्षा थी। इस धारणा को व्यावहारिक बनाने के लिए बीच में एक खाई थी। समाज शिक्षा के कार्य-क्रम को सफल बनाने के लिए भूमिका प्रस्तुत करने की योजना का अभाव ही वो खाई थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सामुदायिक विकास के विस्तृत कार्य-क्रम ने इस खाई को भर दिया। समाज-शिक्षा आन्दोलन को आवश्यक प्रेरणा मिली जिससे वे पूर्व-सीमाओं का अतिक्रमण कर विकसित होने लगी। निसन्देह विकास योजनाओं में समाज-शिक्षा को गर्व के साथ स्थान मिला। जिस लक्ष्य के निमित्त पूर्व मार्ग-दर्शकों ने अपने जीवन का सर्वोत्तम भाग बलिदान कर दिया था उस लक्ष्य पूर्ति की पूर्ण सम्भावना दृष्टि-गोचर होने लगी।

हम उस लक्ष्य-पूर्ति के कितने निकट थे ? उसके मार्ग में क्या क्या बाधाएँ थीं ?

समस्त देश के प्रौढ़-शिक्षा कार्यकर्ताओं को इन प्रश्नों ने परेशान कर दिया ? व्यावहारिक अनुभव के हमारे कुछ ही वर्ष व्यतीत हुए थे। भारतीय प्रौढ़-शिक्षा परिषद् ने विचार किया कि उस अनुभव की समीक्षा दोषों पर प्रकाश डालेगी और हमें उचित मार्ग अपनाने में सहायक होगी।

इसलिए परिषद् ने १२ वें अखिल भारतीय प्रौढ़-शिक्षा सम्मेलन के अवसर पर, जो १९५५ में नई दिल्ली में हुआ, एक परिसंवाद का आयोजन किया। इस सम्मेलन में देश के समस्त भागों से कार्यकर्त्ता उपस्थित हुए थे और जिसमें प्रौढ़-शिक्षा आन्दोलन के सम्बन्ध में विभिन्न धारणाओं के ग़लत या सही होने का निश्चय करने के लिए विविध प्रकार के अनुभव उपलब्ध थे।

इस परिसंवाद में, जैसा कि पाठकों को मालूम होगा, विषय का व्यापक विवेचन किया गया है। सरदार सोहनसिंह ने इस आन्दोलन का एक सम्पूर्ण चित्र हमारे सामने रखा है और उसमें विविध कार्य-कलाप के परिणाम की अपेक्षा उसके गुण-दोषों का अधिक विवेचन करने का लक्ष्य सामने रखा गया।

श्री नानावती ने सामाजिक शिक्षा की विगत वर्षों की गति-विधि का अनुशीलन करते हुए एक नया दृष्टि-कोण सामने रखते हुए कहा है। श्रीमती वैल्दी फिशर ने अपने जीवन भर के अनुभवों की कसौटी पर कस कर कहा है कि नए प्रौढ़ों को उनकी अपनी भाषा को पढ़ने और सीखने का अवसर दिया जाना चाहिए। क्योंकि उनका विश्वास है कि वे तभी सामुदायिक विकास में सक्रिय भाग लेने में समर्थ होंगे। श्री दत्ता ने उन आधार मूल दृष्टि कोणों की चर्चा की है जिनके सहारे सामाजिक शिक्षा संगठन-कर्ता अब तक सामुदायिक विकास क्षेत्रों में कार्य करते रहे हैं। और इस बात की ओर ध्यान दिलाया है कि कार्यकर्त्ताओं को सामुदायिक विकास कार्य-क्रमों में बाधा उपस्थित करने वाले बौद्धिक और भावनात्मक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर सकें। इस प्रकार परिसंवाद के द्वारा विभिन्न दृष्टिकोणों से सामाजिक शिक्षा आन्दोलन का एक पूरा चित्र उपस्थित किया गया है। छोटी छोटी बातों की भी उपेक्षा नहीं की गई है और आलोचना स्पष्ट और निर्भीक भी है।

विचारकों ने आन्दोलन की एक बात के सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं की है। कदाचित् इसलिए कि उसका सामाजिक शिक्षा से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है लेकिन उस पर गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है। उदाहरण के रूप में श्री नानावती ने ठीक ही कहा है कि सामाजिक शिक्षा कार्यकर्ताओं ने शिक्षण कार्य के लिए मनोरंजनात्मक कार्य-कलाप से लाभ नहीं उठाया है। लेकिन सरलता के लिए यह कहना कार्यकर्ताओं के लिए न्याय-संगत नहीं है कि वे अपने कार्य-क्रम में मनोरंजनात्मक तथा सांस्कृतिक कार्य-क्रमों का समावेश करें। कार्यकर्ताओं के लिए आधार-भूत कठिनाई यह है कि उनके पास ऐसी कोई जानकारी नहीं है जिसके द्वारा वे शिक्षण-कार्यों से मनोरंजनात्मक तथा सांस्कृतिक कार्य-कलाप का प्रभावशील उपयोग कर सकें। इसी प्रकार जब श्री दत्ता चाहते हैं कि सामाजिक कार्य-कर्त्ता सामाजिक आचरण से जाति-भेद के आदर्शों और नियमों को निकाल दें तब इस दिशा में कोई कार्य-क्रम बनाने के लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक शिक्षा कार्य-क्रम का विकास समाज-विज्ञान सम्बन्धी जानकार हों जो इस समय उनके पास नहीं है। और जब तक इस प्रकार की आवश्यक जानकारी इस ढंग से प्राप्त कराने का उद्योग नहीं किया जाता कि कार्य-कर्त्ता उसे शीघ्रता से समझ सकें और आत्मसात कर सकें। तब तक जैसा कि सरदार सोहनसिंह ने कहा

है कार्यकर्ताओं के सारे प्रयत्न विफल होते रहेंगे और एक अदृश्य शक्ति मानों जैसे किसी जादू के प्रभाव से सोने को मिट्टी में बदल दे उसी प्रकार कार्यकर्ताओं के उद्योग को निष्फल करती रहेगी।

यह एक ऐसी समस्या है जिसे सामाजिक शिक्षा आन्दोलन अपने आप हल नहीं कर सकता। इसके लिए सामाजिक वैज्ञानिकों को ध्यान देने की आवश्यकता है जो कार्यकर्ताओं के अनेक प्रश्नों और सन्देहों का साधिकार उत्तर दे सकते हैं। इसका यही उपाय है कि कार्यकर्ताओं और विशेषज्ञों के बीच ताल-मेल उसी माध्यम द्वारा स्थापित किया जा सकता है जो एक की आवश्यकताओं की व्याख्या दूसरे के द्वारा कर सके और इस प्रकार आन्दोलन की शृंखला को जोड़ सके।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारतीय प्रौढ़-शिक्षा परिषद् की स्थापना की गई और प्रारम्भ से ही यह संस्था अपनी पूरी क्षमता और उपलब्ध वित्तीय साधनों द्वारा उसकी पूर्ति का प्रयास कर रही है। जैसे जैसे आन्दोलन प्रगति करेगा उसके द्वारा अधिकाधिक पेचीदा समस्याएं उपस्थित होंगी जिनके हल करने में इतने अधिक साधनों की आवश्यकता होगी जिन्हें यह संस्था नहीं जुटा सकती। प्रथम पंचवर्षीय योजना में इस संस्था के कार्य की ओर ध्यान दिया गया है और जिस ढंग से उसने अपना वह कार्य किया है उसकी प्रशंसा की गई है। आशा की जाती है कि सरकार इस प्रशंसा के साथ ठोस सहायता भी करेगी ताकि यह संस्था आने वाले भारी उत्तरदायित्व निर्वहन कर सके। इस आन्दोलन को अपनी समस्याओं का हल ढूंढने के के लिए जब तक कार्य-क्रम मूल्यांकन प्रतिवेदन में इसके सम्बन्ध में जो निराशा व्यक्त की गई है उससे छुटकारा नहीं।

समालोचना तथा दृष्टिकोण

इस प्रकार के परिसंवाद में यह आशा नहीं की जाती कि वयस्क शिक्षा का नया कार्य-क्रम बतलाया जाए बल्कि अब तक जो कार्य-क्रम हुए हैं उनकी समालोचना की जाए। इसलिए हम वयस्क शिक्षा के पांच मुख्य कार्य-क्रम चुन लें और यह देखें कि वो कहाँ तक हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सहायक होंगे। यह उचित होगा कि हम वयस्क शिक्षा को सामाजिक शिक्षा के नाम से पुकारें। ये पाँच मुख्य कार्य-क्रम—सुधारक शिक्षा; सामाजिक तनाव को दूर करना; सामाजिक चेतना को दृढ़ करना; अनुसन्धान केन्द्र तथा देहात के मध्य कड़ी जोड़ना; तथा पुरुषों और स्त्रियों का मानसिक विकास करना है।

ये सब कार्य-क्रम परस्पर सम्बन्धित हैं और हम इनको पृथक पृथक अध्ययन करने के पश्चात् एक सूत्र में बांधेगें।

सुधारक शिक्षा—बहुत समय से वयस्क शिक्षा का अर्थ साक्षरता था यद्यपि अब प्रौढ़-शिक्षा के इस संकुचित विचार को हम छोड़ चुके हैं फिर भी साक्षरता सामाजिक शिक्षा के कार्यप्रणाली का एक आवश्यक अंश है। १९४२ के पश्चात् यह साक्षरता आन्दोलन लगभग समाप्त हो गया था परन्तु १९४८ तथा १९५० के बीच में इसने फिर से ज़ोर पकड़ा परन्तु जहाँ तक हमें ज्ञात हुआ है एक वर्ष के भीतर ४० हज़ार कक्षाओं से अधिक नहीं खुल पाईं। जिस देश की निरक्षर आबादी १८ करोड़ हो उस स्थान में ४० हज़ार कक्षाएँ कोई विशेष महत्व नहीं रखतीं। सामाजिक विकास योजना का प्रभाव साक्षरता पर क्या हुआ, यह बतलाना अभी सम्भव नहीं है क्योंकि अभी तो बहुत कम समय व्यतीत हुआ है लेकिन ऐसा ज्ञात होता है कि इससे साक्षरता को पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई। लेकिन हमारे पास सही आंकड़े नहीं है जिससे यह ठीक ठीक बता सकें कि साक्षरता देश में अधिक फैल गई। पर यह अवश्य है कि साक्षरता आन्दोलन के चलाने की रूप-रेखा में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ।

यह कहते कोई अच्छा नहीं लगता कि हम साक्षरता प्रसार के लिए नई और प्रभावशाली संस्था बहुत ही कम बना पाए हैं। इस कार्य में, अध्यापक-गण सदा हमारे मुख्य कार्यकर्त्ता रहेंगे। परन्तु प्रथम तो हमने पूर्ण रूप से उनका लाभ उठाया ही नहीं, द्वितीय हमने उनका उपयोग समाज से अलग किया जिससे साक्षरता प्रसार में विघ्न पड़ा। बिहार की संस्थात्मक प्रणाली ही उचित थी। इसका उद्देश्य यह था कि निरक्षरता का उत्तरदायित्व पाठशाला के अध्यापक की अपेक्षा पाठशाला पर डाला जाए। लेकिन इस प्रणाली से भी कोई सफलता प्राप्त न हो सकी। अब एक अनुसन्धान कर्त्ता का कार्य यह खोजना है कि यह प्रणाली इस क्षेत्र में अन्य प्रणालियों की भाँति ही असफल क्यों रही ?

मैं एक बार फिर कहता हूँ कि पाठशालाएँ साक्षरता आन्दोलन से बिल्कुल पृथक रही हैं, जिस प्रकार हमारी सामान्य शिक्षा-संस्थाएँ आन्दोलन से परे रहीं। यह सब दुःख की बात है। इस प्रकार से पृथक रह कर कार्य करना किसी के लिए भी हितकर नहीं है। शिक्षा मंत्रालय ने "पाठशाला-सह-सामुदायिक केन्द्रों" की पद्धति से इस समस्या को सुलझाने की चेष्टा की। परन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि यह पद्धति भी सफल नहीं रही। निसन्देह, सामुदायिक विकास योजना ने साक्षरता आन्दोलन के लिए आवश्यक संगठन के अभाव की पूर्ति की। यह संगठन आन्दोलन के उत्तरदायित्व का भार ले लेगा। अध्यापक अपने को इस आन्दोलन का एक अंग समझ सकेगा। जहाँ तक यह हो सके अच्छा ही है परन्तु शिक्षा संस्थाओं का अभी भी साक्षरता आन्दोलन में ही नहीं अपितु समाज शिक्षा आन्दोलन में भी अपना उचित स्थान है।

द्वितीय, साक्षरता शिक्षकों को उपलब्ध वस्तुओं तथा उनकी पद्धतियों में संशोधन करने के लिए हमने कोई बड़ा क़दम नहीं उठाया। अभी भी केवल अक्षर-ज्ञान पर ही ज़ोर दिया जाता है। इस बात पर नहीं कि छपे हुए पृष्ट को पढ़ कर दूसरों के मनोभावों को समझा जाए तथा उनके अनुभवों से कुछ सीखा जाए। परिणाम स्वरूप, साक्षरता का द्वितीय स्तर पाठ्य क्रम समाप्त कर या उसके पश्चात् पढ़ कर भी साक्षर वयस्क अपने जीवन में पढ़ाई से लाभ नहीं उठा सके। बहुत समय से साक्षरता कार्यकर्ताओं को यह महसूस होने लगा है कि इसके ढंग और उपकरणों का अनुसन्धान होना

चाहिए। परन्तु जो कुछ भी अनुसन्धान हो चुका है उसी का लाभ नहीं उठाया गया। साक्षरता-शिक्षक-गण उचित, अधिक सफल पद्धति तथा उपकरण के लिए नहीं चेते।

कभी कभी शिक्षक के लिए साक्षरता का ध्येय भी स्पष्ट नहीं होता। शिक्षक केवल भाषा-ज्ञान की ही शिक्षा देता है जबकि उसका लक्ष्य वयस्क को अध्ययन करने की शिक्षा देना होना चाहिए। भाषा-ज्ञान की शिक्षा उचित है या अनुचित इसका प्रश्न उठाने की अपेक्षा इस पर ज़ोर देना चाहिए कि साक्षरता का ध्येय अध्ययन करने की शिक्षा देना है। अतएव, साक्षरता शिक्षा साधन शिक्षित वयस्कों के अनुसन्धानित शब्द-कोष पर निर्भर होना चाहिए। पद्धति का वयस्कों की रूचि, उनके हित, विश्वास, तथा रीति-रिवाज़ के साथ मेल होना चाहिए।

जैसे ही आधार-भूत साक्षरता की योग्यता प्राप्त हो जाए, मेरा विश्वास है कि हमारे लिए अधिक सरल कार्य रह जाता है। क्योंकि १९४० से लेकर देश में वयस्कों के हित के लगभग सभी विषयों पर प्राथमिक साहित्य के पश्चात् का पर्याप्त निर्माण हुआ। नव-साक्षरों के लिए साहित्य का निर्माण यथेष्ट बड़े पैमाने पर हो रहा है।

सामाजिक तनाव दूर करने के लिए समाज-शिक्षा

प्रौढ़-शिक्षा के विचार से समाज-शिक्षा ने दो प्रकार से उन्नति की है। एक सामाजिक अनुरूपता तथा दूसरे सामाजिक एकता। परन्तु हम अपने विचारों को कहाँ तक व्यावहारिक रूप दे सकते हैं वह एक बिल्कुल भिन्न बात है।

राज्य-पुनर्गठन आयोग की घटनाओं से पता चलता है कि देश में समाज-शिक्षा किस प्रकार असफल रही और इसके सामने कितने अवसर हैं।

हमारा पुरातन समाज वर्ण-भेद पर आधारित था। वर्ण-पद्धति उस युग से पहले काम कर रही थी जब व्यक्तित्व का मान था, यद्यपि बहुत सुन्दर ढंग से नहीं, फिर भी सामान्य तौर पर अच्छा कार्य कर रही थी। परन्तु पश्चिमी देशों के सम्पर्क में आने से एक नए युग का प्रारम्भ हुआ।

वर्ण-संस्कारों की जड़ें कटने लगीं। ऊँच-नीच के भेद-भाव बढ़-गए। विशाल नगरों में ये भेद-भाव मिटने लगे परन्तु वहाँ अन्य भेद आ खड़े हुए। इस प्रकार मानव स्वभाव के इन भेद-भाव के मूल कारणों के निवारण का प्रयास नहीं किया गया। यह कार्य केवल शिक्षा के माध्यम से पूर्ण हो सकता था। भारत में समाज-शिक्षा के लिए यह एक खुला क्षेत्र है।

किसी सामाजिक उद्देश्य पूर्ति के लिए नेतृत्व आवश्यक है। ऐसा नेतृत्व जो वास्तव में किसी उद्देश्य तक पहुँच सके स्वाभाविक तथा व्यापक होना चाहिए। इसका यह अर्थ है कि समाज-क्षेत्र के हर स्तर पर हमारे नेता अनेक देशों की ईर्ष्या का कारण बने हुए हैं परन्तु नीचे स्तर पर या तो नेता हैं ही नहीं या फिर बिल्कुल अप्रवीण। निसन्देह यन्त्र-शास्त्र, औषधि-विज्ञान, न्याय-शास्त्र इत्यादि जैसे व्यावसायिक क्षेत्रों में देश ने अच्छे नेता उत्पन्न किए हैं। परन्तु सामाजिक कार्य क्षेत्र में असफलता ही मिली।

अब देश में कुछ ऐसे सार्वजनिक सेवक हैं जिन पर सामाजिक तनाव कम करने का कार्य निर्भर है। अर्थात् उनका कार्य सामाजिक अनुरूपता बढ़ाना है। ये सेवक सामुदायिक योजना राष्ट्रीय विस्तार सेवा संघ के समाज-शिक्षा संगठन-कर्ता हैं। सामाजिक तनाव दूर करना उनके प्रशिक्षण का एक अंग है। हम चाहते हैं कि उनके कार्य का भी एक अंग हो जाए। उन्हें चाहिए कि वे जनता को समझाएं कि एक व्यक्ति या समूह अथवा सामुदायिक सुख-शान्ति इसी में है कि वे अन्य व्यक्तियों या समूह अथवा सामुदायिक सुख शान्ति में खलल न डालें। पारस्परिक मेल-जोल से उनकी अपनी शान्ति में वृद्धि ही होगी।

परन्तु समाज-शिक्षा इस कार्य को कैसे पूरा करे? यह केवल स्थानीय नेताओं के लिए उचित प्रकार की संस्थाओं की स्थापना करके ही किया जा सकता है। यह हमारी एक बहुत बलवती आशा थी कि जनता कॉलिज यह कार्य पूर्ण कर सकेगा। पर दुर्भाग्यवश जनता कॉलिजों को हमारे ग्राम-वासी पसन्द न कर पाए। ऐसे भी कुछ हैं जो अपनी निर्धनता को दोष देते हैं। उनका कहना है कि जब कभी कॉलिज ने कार्य किया है तो ऐसी उपयोगी हस्त कलायें सिखा कर जिन पर अल्प-व्यय होता हो, या कम से कम वो ऐसी समझी जातीं हैं। परन्तु वास्तव में यह समाज-वादियों की असफलता है, यह हमारी असफलता है।

सामाजिक चैतन्य को दृढ़ करने के लिए समाज-शिक्षा

समाज-शिक्षा का सबसे बड़ा कार्य समाज को इतना बल देना है कि वो आधुनिक युग की समस्याओं को शक्ति तथा विश्वास के साथ हल कर सके। और सामाजिक तनाव दूर करना इसी कार्य का निषेधात्मक पहलू हैं।

समाज-वेत्ता इस बात की खोज में रहते हैं कि आधुनिक नगरों में, औद्योगिक सभ्यता के समय ये मानवीय बुराईयाँ उत्पन्न हुईं तो कैसे हुईं? बाल्य-काल में ही अपराध प्रवृत्त, दोषी स्वभाव, वेश्याएँ (ये कुछ धर्म-भ्रष्ठ मनुष्यों के नाम हैं) इन्हें देहाती सभ्यता में, वर्तमान युग से पहले कोई जानता भी न था। उनकी खोज के अनुसार इसका कारण समुदाय के अन्तर्सम्बन्ध का टूट जाना है। प्राचीन आत्म-निर्भर देहात में प्रत्येक निवासी हर दूसरे निवासी को जानता था। उसे यह भलीभाँति ज्ञात था कि उसके जीवन का अधिकतम भाग उसके उन साथियों के साथ ही व्यतीत होगा। इससे उत्पन्न स्थिति सामाजिक उत्तरदायित्व की वृद्धि में सहायक होती थी। कोई किसी दूसरे का अहित करने का साहस नहीं कर सकता था। उसे भय होता कि उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया जायगा। उसका तिरस्कार होगा। अपयश होगा। लेकिन आज के नागरिक समाज में यह तिरस्कार या तो होता ही नहीं और होता भी है तो बहुत हल्का। प्राचीन समाज में यदि किसी का सामाजिक तिरस्कार होता था तो वह मिट्टी में मिल जाता था। आज नियम, कानून, जेल ये सब सामाजिक तिरस्कार की तुलना में तनिक भी प्रभावशाली नहीं हैं।

अनेक शैक्षिक समाज-वेत्ताओं का विचार है कि यदि हम फिर से ऐसे समाज की पद्धति पर वापिस चले जाएँ जहाँ अन्तर्सम्बन्ध रखने वाले समुदाय हों तो ये सामाजिक बुराईयाँ दूर हो जाएगीं। परन्तु छोड़ा हुआ तीर वापिस नहीं आता। जब आधुनिक युग में, इस जीवन-काल में ही मनुष्य गुरुत्वभार के शिकंजे को भंग कर चाँद और ग्रहों तक पहुँचने का स्वप्न देख रहा है, तब अन्तर्-सम्बन्ध रखने वाले समुदाय की आशा करना व्यर्थ है। किसी समस्या का समाधान प्राचीन रूढ़ियों में फंसना नहीं है, परन्तु उसका समाधान शिक्षा द्वारा मानव के व्यक्तित्व के विकास में है, उसको समाज-शिक्षा भी कह सकते हैं। यह एक कठिन कार्य है पर उसे करना आवश्यक है।

समाज-शिक्षा के पाँचवे कर्त्तव्य अर्थात् वयस्कों के मानसिक विकास द्वारा ही सामाजिक स्वास्थय को ठोस आधार पर उठाया जा सकता है। परन्तु, वर्तमान परिधि में भी बहुत कुछ करना है। यह कार्य जनता में सामाजिक ढंग की विचार-शक्ति को विकसित करने से। उनकी सामान्य समस्याओं का समूहों द्वारा समाधान करने से। इस प्रकार की संस्थाओं का निर्माण करने से जो इस प्रकार के समूहों की सहायता कर सके, किया जा सकता है। स्थानीय तौर पर युवक-संघ, महिला समितियाँ, ऐसे सामूहिक संस्थाओं के उदाहरण हैं। स्थानीय पुस्तकालय तथा सामुदायिक केन्द्र जैसी अनेक संस्थाएँ ऐसे समूहों की सहायता कर सकती हैं। व्यावसायिक संगठन जो केवल कर्मी-संघ ही नहीं है, दूसरे व्यावसायिक संगठन के कार्य में सहायता देने को तत्पर हैं। ये ऐसी समस्याएँ हैं जो सामाजिक चेतनता को बल देती हैं। फिर ऐसी संस्थाओं को सभी स्तरों पर कार्य करना होगा, स्थानीय स्तर से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक; उनका आधार रीतियों की अपेक्षा विकसित आत्म-हित होगा। उन्हें जनता से नहीं अपितु कार्य से बल प्राप्त होगा।

आज भारत वर्ष में, समाज सेवा का कार्य करने के लिए एक संस्था का विकास हो रहा है। हर विकास खंड में दो समाज-शिक्षा संगठन कर्ता ऐसे समूहों का निर्माण कर रहे हैं जो वर्ग-संस्कार द्वारा अपने क्षेत्र के सदस्यों में उत्पन्न दृढ़ सामाजिक चेतनता को हटाए बिना प्राचीन वर्ग-भेद को हटा दे। जैसे पहले कहा जा चुका है यह एक कठिन कार्य है। मनुष्यों में शताब्दियों से चली आई प्रथाएँ, समाज में रहने-सहने का ढंग और उनकी आदतें जमी हुई हैं। उन्हें अल्प समय में हटाना कोई सहज कार्य नहीं है। परन्तु ये स्त्री-पुरुष अपने कार्य में संलग्न हैं और आशा है कि वो पानी और हवा से भी अधिक तेज़ी से धीरे-धीरे उस चट्टान सी बाधा को नष्ट कर देगी। उसका केवल नाश ही नहीं करेगी अपितु उनके स्थान पर ऐसे भवनों का निर्माण करेगी जो सदियों तक अटल खड़े रहेगें।

परन्तु समाज-शिक्षा कार्य-कर्ता शून्य में कार्य नहीं करते उच्च श्रेणी के प्राणियों की भाँति, उच्च श्रेणी का समाज भी परिवर्तन पर आधारित है। यह परिवर्तन जनता की आर्थिक सामर्थ्य को ऊँचा उठाने की ही किया जा सकता है। यद्यपि जनता के इस पहलू के सुधार का उत्तर दायित्व समाज-शिक्षा कार्य-कर्ता पर नहीं है; तथापि थोड़ा सा उत्तरदायित्व उसका भी है।

अर्थात्, प्रथम तो उसे यह समझना होगा कि राष्ट्रीय-जीवन के सभी पक्ष एक सूत्र में बँधे हैं। फिर सामाजिक स्वास्थ्य, जनता के आर्थिक, सामाजिक तथा मानसिक विकास के लिए उसे अपनी प्रविधि व्यवहार में लानी होगी।

अनुसन्धान केन्द्र तथा देहाती घर के बीच की कड़ी समाज-शिक्षा

उपर्युक्त कथन से स्वभावतः एक प्रश्न उठता है। क्या एक समाज-शिक्षा कार्य-कर्त्ता अपने ऊपर इतना भारी कार्य ले सकता है? प्रश्न का उत्तर समाज-शिक्षा के दूसरे कार्य में निहित है। अब तक के बताए गए कार्य से वो अधिक विस्तृत कार्य है।

आधुनिक समाज एक पेंचीला मामला है। इसमें सब कार्यों का विशेषीकरण है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है विकसित समाज में परिवर्तन शीघ्रता से हो रहा है। शीघ्र शारीरिक परिवर्तन को विशेष अंग ही संभालते हैं। उसी प्रकार, जीवन के अत्यन्त उच्चस्तर पर पहुँच रहे समाज को सहारा देने के लिए असाधारण रूप से विशेष संस्था चाहिए। समाज की प्रगति के साथ-साथ ही विशेष सँस्थाओं की संख्या में भी वृद्धि होनी चाहिए और उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार का होना चाहिए।

इन विशेष सँस्थाओं में से एक अनुसन्धान केन्द्र भी है जो समाज का सर्वाधिक महत्व-पूर्ण अंग है। प्रगतिशील समाज के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ऐसी समस्याएं आ पड़ती हैं जिनका हल उनके बस का नहीं। ये केन्द्र दूर-दूर तक के और सब प्रकार के समाचार जानने के कारण अपनी विशेष पद्धति बताते हैं और उन पर प्रयोग करते हैं। अब समस्या यह है कि अनुसन्धान-केन्द्र तथा साधारण मनुष्य के मध्य अन्तं सम्बन्ध कैसे कायम रहे। समस्या का हल विस्तार की प्रविधि द्वारा हो गया है। यद्यपि विस्तार भी प्रौढ़ (या समाज) शिक्षा का एक अंग है। मैं यहाँ उसी पक्ष का वर्णन करूंगा जो समाज-शिक्षा से अधिक सम्बन्धित हैं। यह वो पहलू है जिसे हम विस्तार सेवा तथा सामान्य मनुष्य का पारस्परिक समझोता कर सकते हैं। जनता को विस्तार-सेवा या कोई भी ऐसी सेवा-संस्था के सम्बन्ध में अवगत कराना है जिसका कि वो लाभ उठा सकती हैं। वो इस प्रकार की सेवा-संस्थाओं का किस प्रकार अधिक तम लाभ उठा सकते

हैं इसके लिए उन्हें प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है। साथ ही, विस्तार सेवा कार्य-कर्त्ता को ऐसी दिशा तथा ऐसे ढंग से जनता से सम्पर्क रखना चाहिए कि जनता उनके कार्य को अधिक से अधिक सराह सके। उनकी सुविधानुसार ही उनके पास पहुँचना चाहिए। उनकी रुचि व अरुचि के अनुरूप ही अपने को ढाल लेना अनिवार्य है। केवल तभी वह अपने कार्य में सफल हो सकता है। इस तरह अधिकतम मनुष्यों को लाभ पहुँचाने का सन्तोष ही उसका पारितोषिक होगा।

भारतवर्ष में, सामुदायिक योजनाओं तथा राष्ट्रीय विस्तार क्षेत्र में ऐसी विस्तार संस्थाएँ हैं जो जनता की आवश्यकतानुसार ही कार्य करती हैं। वे संस्थाएं कृषि में अति दृढ़ हैं, स्वास्थ्य में तनिक कम और छोटे पैमाने के उद्योग तथा कुटीर उद्योग में अग्रसर हो रही हैं। समाज-शिक्षा संगठन-कर्त्ता तथा ग्राम सेवक समाज सेवा प्रणाली द्वारा गृहों व हमारे करोड़ों ग्रामीणों के हृदयों तक पहुँच कर इस विस्तार सेवा में प्रवृत्त एक महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं।

फिर भी विस्तार-सेवा संघ जनता को अभी तक अव्यावहारिक ज्ञान ही दे रही है ज्ञान की नवीन बातें, अनुसन्धान के नए सफल प्रयोग उन तक सीधे पहुँचाए ही नहीं जाते हैं और इसलिए उनमें उत्साह भी नहीं बढ़ता।

समाज-शिक्षा कार्यकर्ता को विशेष अनुसन्धान विस्तार सेवा व जनता दोनों के मध्य कड़ी का कार्य करना है। उसे साधारण मनुष्य की आवश्यकताओं को स्पष्ट करके ऐसे शब्दों में व्यक्त करना है कि एक विशेषज्ञ उसे ग्रहण कर सके। उसे साधारण मनुष्य को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए कि वो विशेषज्ञ को एक मित्र व पथ-प्रदर्शक माने, वैज्ञानिक की खोजों को समझने में उसकी सहायता करनी चाहिए। अनुसन्धानकर्ता तथा देहाती कर्मचारी, सब भारत व विश्व के उन्नत कराने के एक ही उद्देश्य से कार्य कर रहे हैं उन्हें यह महसूस कराने का कार्य भी उसके लिए कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है।

मानसिक विकास के हेतु समाज-शिक्षा

समाज-शिक्षा कार्यकर्त्ता को अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यह समझाने में समर्थ होना चाहिए कि वह अपने देश और संसार के

के हितों को अपने निजी हितों से अधिक माध्यता दे। उसमें इतना मानसिक विकास हो जाना चाहिए कि वो केवल करोड़ों भारत वासियों को ही अपना न माने, अपितु सारे संसार के अरबों साथियों को भी अपना समझे।

समाज-शिक्षा के इस कार्य का मैं दो दिशाओं में वर्णन करूंगा। प्रथम, समाज-शिक्षा का कर्तव्य है कि वो जनता को पंचशील के सिद्धान्त तथा उनको अभ्यास करने की विधि बताए। अहिंसा और परस्पर आदर के आधार पर सहकारी संसार का निर्माण करना ही पंचशील का उद्देश्य है। पंचशील का सिद्धान्त केवल राष्ट्रों के ही लिए नहीं, अपितु यह व्यक्ति विशेष, समूहों व सम्प्रदाओं सभी के लिए हितकारी है। पंचशील का मुख्य उद्देश्य निजी हित, किंवा पूर्णतया आत्म-उद्धार नहीं है बल्कि वो अर्न्तज्ञान है जिसके अनुसार सारे मानव एक हैं। इस संसार के सारे भिन्न-भिन्न मनुष्यों को एक लय एक-ताल हो जाना है जिससे प्रत्येक मनुष्य यह अनुभव कर सके कि यद्यपि हरेक मनुष्य पृथक कार्य करता है तथापि सारे मनुष्य एक ही सूत्र से बँधे हैं। यह समाज-शिक्षा का कर्तव्य है कि वो एक ही बन्धन के इस भाव को सब में जमाए। यदि युद्ध भी मनुष्यों के मस्तिष्क से आरम्भ होता है तो एकता का भाव भी। समाज-शिक्षा का कर्तव्य है कि वो मनुष्यों के मस्तिष्क में एकता का बीजारोपण करे। जैसे अंकुर फूटता है, वृक्ष बढ़ता है, मस्तिष्क का भी विकास होगा और मानवीय व्यक्तित्व आभा-मय हो चमकेगा।

द्वितीय, जनता-जनार्दन में यह दृष्टि-कोण जागृत करता है कि वह उन्नतिशील समाज के अंग है और उनका कुछ कर्तव्य भी है। प्रारम्भ में जनता को योजना के सम्बन्ध में अवगत कराना है। समाज-शिक्षा संगठन-कर्त्ता का यह सामान्य कर्तव्य है। पर हमारी योजनाएं केवल पंच-वर्षीय योजनाएं हैं परन्तु सामाजिक अवधि पाँच वर्ष तक सीमित नहीं की जा सकती। हमें अपने जीवन को उसी कर्तव्य के दृष्टि-कोण से देखना चाहिए जो इतिहास ने हमारी सन्तति को सौंप दिया है। सौभाग्यवश, हमारी कहानी लम्बी है और इतिहास के प्रभाव से आरम्भ होती है। समय के इस विशाल चित्रपट पर हम राजा और राज्य देखते हैं जिन्हें अपने अल्प-कालीन वैभव के पश्चात् मृत्यु का ग्रास बनना पड़ा। उसी प्रकार एक मनुष्य भी अपनी स्मृति-पटल पर अपने अच्छे और बुरे दिन भी आते-जाते देखता है। वैसे ही हम देखते हैं कि हमारा युग भी बीत जाएगा और इतिहास में, मानवता के चक्र को भेंट किए गए महान् कार्यों से इसका मूल्यांकन होगा।

परन्तु सम्भव है मैं समाज-शिक्षा से अत्यधिक आशा कर रहा हूँ। कुछ भी हो, यहाँ हम उस स्थान पर पहुँच गए हैं जहाँ समाज-शिक्षा शिक्षा में लुप्त हो जाती है और शिक्षा बुद्धि-मता में। ऐसी कोई रेखा नहीं है जो एक को दूसरे से पृथक करती हो। अतएव हमें ऐसा स्थान नहीं मिला जहाँ हम कह सकें कि बस यहीं तक और आगे नहीं।

गीता में इस जन-संसार की तुलना एक पीपल-वृक्ष से की गई है जिसके जड़ें ऊपर फैली हों और पत्ते नीचे लहलहाते हों। यह उस अक्षुण्ण-सत्य की व्याख्या करता है कि मानवता का पोषण अनिवार्यत: उस बुद्धि द्वारा है जो "ऊपर से आती" है। जब तक सामुदायिक विकास को प्रतिकूल परिस्थितियों से चतुर प्रविधि द्वारा भौतिक सुखों के हेतु एक संघर्ष समझा जाता है, हमें यह समझ लेना चाहिए कि समाज-शिक्षा मनुष्यों के मानसिक विकास को लक्ष्य कर रही है। दूसरे शब्दों में यह वो नली है जो आलौकिक और पवित्र वृक्ष की उपरी जड़ों से बुद्धिमता का अमृत बहा कर नीचे जन-सागर को पान कराती है।

LIBRARIES IN SOCIAL EDUCATION

(Report of the Sixth National Seminar)

Price : Rs. 3/8. **Usual discount to members of IAEA**

Can be had of

The Indian Adult Education Association

30, Faiz Bazar,

Delhi

प्रौढ़-शिक्षा का भविष्य

सामुदायिक विकास में प्रौढ़-शिक्षा के कर्त्तव्य पर विचार-विमर्ष करने से पहले यह आवश्यक है कि हम एक बार "समुदाय" शब्द को समझ लें क्योंकि भिन्न-भिन्न मनुष्य इस का भिन्न-भिन्न अर्थ लगाते हैं। कुछ का विचार है कि यह धार्मिक सम्प्रदाय है। कुछ इसे सांस्कृतिक तथा जाति-समूह और कुछ इसे आर्थिक और कुछ इसे सम्प्रदाय मानते हैं। कुछ उसे एक स्थान में रहने वाले जन-समूह समझते हैं। समाज-विज्ञान के अनुसार "सम्प्रदाय उन मनुष्यों का सार्वलौकिक जीवन है जो अपने बनाए हुए नियमानुसार पारस्परिक सम्बन्ध व सामाजिक एकता का जाल बुनते हुए सक्रिय तथा स्वतन्त्रता-पूर्वक कार्य करते हैं। ये समुदाय अर्थात् परस्पर सम्बन्धित जीवन हेतु आदर्श परिस्थितियाँ बनाते हैं। व्यवहार में, हमें अनेक प्रकार के समुदाय मिलते हैं। प्रौढ़-शिक्षा के हेतु किसी परिषद् के प्रभावशाली उपयोग के उद्देश्य से, हम ऐसे उपयुक्त भौगोलिक एकांश काम में ला सकते हैं जहाँ प्रमुख मानवीय, ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक जैसे रुचि-पूर्ण कार्य-क्रम व्यवस्थित रूप से संगठित हों। समूह में बने रहने की इच्छा साम्प्रदायिक जीवन का अनिवार्य अंग है। किसी सामुदायिक जीवन के प्रभाव को मापने के लिए उस समुदाय के सदस्यों में समूह में रहने की भावना का मापना आवश्यक है।"

एक आदर्श व्यवस्थित सम्प्रदाय को अपने सदस्यों के लिए निम्न-लिखित व्यवस्थाएँ कर देनीं चाहिए:—

(i) शासन व शान्ति द्वारा जीवन तथा सम्पत्ति की सुरक्षा;

(ii) ऐसी अर्थ-व्यवस्था जिसमें सदस्यों को व्यवसाय, रोज़गार तथा न्यूनतम जीवन-स्तर प्राप्त हो सके;

(iii) उच्च-स्तर के स्वास्थ्य तथा स्वच्छता के साथ शारीरिक सुधार;

(iv) सुचरित्र;

(v) निजी धर्म को पहचानने और दूसरों के धर्म को मान्यता देने में आध्यात्मिक प्रेरणा के अवसर;

(vi) बौद्धिक कार्य-क्रम के लिए उपयुक्त अवसर जो जनता को सुगमता से उपलब्ध हों तथा न्यूनतम शिक्षा का प्रबन्ध;

(vii) अवकाश में रचनात्मक कार्य का अवसर तथा

(viii) राजनैतिक चेतनता, अधिकारों की माँग तथा नागरिकता के उत्तरदायित्वों के विकास के लिए लोक-तन्त्रीय व्यवस्था।

ये मुख्य बातें हैं जो किसी समुदाय के साथ कार्यकर्त्ता को ध्यान रखनी चाहिए यदि वो उस समुदाय को कार्य-लक्ष्य बनाना चाहता है। बहुत सम्भव है कि उसे कोई आदर्श समुदाय प्राप्त न हो। यदि एक पक्ष पर्याप्त हो तो अन्य का अभाव हो। किसी समुदाय के सदस्य के साथ कार्य करके, उसमें उपलब्ध साधन तथा उसकी आवश्यकताओं में एक संतुलन उत्पन्न करना, सम्प्रदाय के सर्वांगीण विकास के हेतु प्रयत्न करना ही उस प्रौढ़-शिक्षा कार्य-कर्त्ता का ध्येय होना चाहिए। इसके लिए उसे समुदाय का गत इतिहास, सांस्कृतिक तथा सामाजिक रीति-रिवाज जानने की आवश्यकता है और उसे जानना चाहिए उसका आर्थिक जीवन, विभिन्न समूहों और लघु-समुहों के साथ इसके सम्बन्ध, जाति, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक व अन्य रुचियाँ। दूसरे विभिन्न समूहों के साथ सम्बन्ध रखने में उसकी प्रवृत्तियों का सूक्ष्मता से निरीक्षण तथा अनुभव करने से समुदाय के समस्त पक्ष समझने में सहायता मिलेगी। इसके लिए आवश्यक है कि जाति, वर्ण इत्यादि के सम्बन्ध में अपने पक्षपातों को वो भली-भाँति जाने। अन्यथा, साम्प्रदायिक जीवन के भिन्नभिन्न पक्षों के विकास के समय उसकी रुचि व अरुचि उसके कार्य व निर्णय में विघ्न डालेगें। फिर भी उचित रूप से कार्य करने के लिए सम्प्रदाय के अभावो की पूर्ति से आरम्भ करना चाहिए तथा अन्य आवश्यकताएँ संयुक्त प्रयास द्वारा पूरी करनी चाहिए।

प्रौढ़-शिक्षा के लिए सामुदायिक प्रभाव

प्रौढ़-शिक्षा के प्रभाव के लिए समुदाय की उपयोगिता के प्रश्न का उत्तर देना अभी बाक़ी है। प्रौढ़-शिक्षा में प्रौढ़-अवस्था का ज्ञान निहित है। यह नवीन ज्ञान है। पहली शिक्षा की ही शृंखला नहीं है। प्रौढ़-शिक्षा के मुख्य ध्येय हैं :—प्रथम, समुदाय के प्रौढ़ों को व्यक्तिगत तथा सामुदायिक आवश्यकताओं का ज्ञान कराना। द्वितीय, उन्हें ऐसी शिक्षा देना जो उनकी समस्याओं

को सुलझाने में सहायक हो सके। इस प्रकार, प्रौढ़शिक्षा जनता-जर्नादन का ही उद्भव है। अतएव उनकी आवश्यकताओं, समस्याओं और परिस्थितियों के अनुसार ही कार्य-क्रम बनाना चाहिए। क्रियात्मक निपुणता व सामुदायिक विकास द्वारा समावेश की वृद्धि ही प्रौढ़-शिक्षा का ध्येय होना चाहिए। अतएव प्रौढ़-शिक्षा का कार्य-क्रम सामुदायिक जीवन की पृष्ठ-भूमि पर आधारित होना चाहिए।

यदि विभिन्न नागरिकों के लिए प्रौढ़-शिक्षा का कार्य-क्रम सफल बनाना हो तो यह आवश्यक है कि इसे सामुदायिक जीवन से सम्बद्ध बनाया जाए। सम्भव है कि इसी कारण से भूत में, प्रौढ़-शिक्षा को समाज-शिक्षा में परिवर्तित कर दिया गया, यद्यपि, केवल नाम परिवर्तन कर देने से ही उसके कार्य-क्रम समुदाय के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित नहीं हो गए।

प्रौढ़-शिक्षा का प्रभाव डालने के लिए समुदाय को एक क्षेत्र मान लेना लाभदायक है। व्यावहारिक कार्य-कर्त्ताओं के पास कार्य के लिए एक विशिष्ठ क्षेत्र तथा विशिष्ठ कार्य होगें। वर्तमान काल में तो कार्य-कर्त्ता-गण समाज-शिक्षा के अनेकानेक अर्थ, ध्येय तथा कर्त्तव्य में खो जाते हैं। तभी एक दक्ष तथा ज्ञानवान कार्य-कर्त्ता के लिए आवश्यक है कि वो सम्प्रदाय के अन्तर-सामूहिक तथा समूह के मध्य के सम्बन्धों को समझे और प्रौढ़-जीवन के अभावों और आवश्यकताओं के अनुसार ही शिक्षा का कार्य-क्रम बनाए। अभी तो, अधिकतर स्थानों में, प्रौढ़-शिक्षा का क्षेत्रीय कार्य या तो प्राथमिक पाठशाला अध्यापकों के ऊपर, या ग्रामसेवकों के कंधों पर डाल दिया गया जबकि उनके सिर पर बहुत दायित्व के कार्य हैं। देहली की भाँति यदि कहीं प्रथक समाज शिक्षकों को नियुक्त किया गया है, तो उनका विद्या-ज्ञान उनका प्रशिक्षण तथा उनका वेतन इतना सीमित है कि किसी साम्प्रदायिक जीवन के लिए उपयुक्त प्रौढ़-शिक्षा कार्य-क्रम बनाना उनकी सामर्थ्य के बाहर है। वो या तो साक्षरता शिक्षक या शिल्प-कला शिक्षक बन कर या लोक-गीत गायक बन कर ही रह जाते हैं। वास्तव में, उनसे कुछ चमत्कार की आशा करना भी अस्वाभाविक है।

समुदाय-योजना प्रशासन ने "सामुदायिक प्रणाली" को स्वीकार कर लिया है परन्तु, एक ग्राम-सेवक के अनेक लक्ष्य-पूर्ति करने योग्य कार्य-कर्त्ता से यह आशा की जाती है कि वो तीन-चार हज़ार आबादी वाले ५ ग्रामों

में कार्य-करे। यह संख्या उसकी पहुँच के बाहर है। व्यवहार में, वो ग्रामीण समुदाय की समस्याओं के अत्यन्त छोटे भाग को ही स्पर्श कर सकता है। उसका कार्य ही ऐसा निश्चित किया गया है कि उसे अपरिक स्तर पर रहना पड़ता है। वो कार्य-कर्त्ता जो समाज-शिक्षा में विशेष प्रशिक्षित हैं और जो किसी विश्व-विद्यालय से उच्च शिक्षित हैं वो प्रायः निरीक्षक का कार्य करते रहते हैं। उन्हें ५० से १०० देहात तक निरीक्षण करना होता है। परिणामत ! सामुदायिक जीवन से उनका सम्पर्क तो नहीं के बराबर है। अतएव, यह स्मरणीय है कि जो शाघ्रता में सारी भूमि पार करना चाहते हैं उन्हें सामूहिक पद्धति द्वारा प्रौढ़-शिक्षा का प्रयास नहीं करना चाहिए। वो प्रौढ़-शिक्षा आन्दोलन में अच्छाई की अपेक्षा बुराई ही अधिक करते हैं।

समाज-शिक्षा का वर्तमान कार्य-क्रम

प्रौढ़-शिक्षा के लिए सामुदायिक जीवन का क्या महत्व है इस इसको ध्यान में रखते हुए, हम समाज-शिक्षा के वर्तमान कार्य-क्रम का निरीक्षण करें और पता लगाएँ कि कहाँ तक यह नए परिवर्तन के अनुरूप हो सकती हैं। केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रकाशित १९५१-५२ के शिक्षा प्रतिवेदन से ज्ञात होता है कि उस वर्ष में, देश में, ४३, ४६३ समाज-शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की गई थी। उन पर ७१,८२,६६३ रु० व्यय हुए थे। उनमें ६,०२६६० पुरुष तथा १,५८,६२० स्त्रियाँ प्रवेश हुई थीं। ४१,२३४ शिक्षक थे जिन्होंने ४,२०,१४६ पुरुष तथा ६८,६८६ स्त्रियों को साक्षर किया। प्रति वयस्क औसतन १४ रु० ७ आ० व्यय हुआ। समाज-शिक्षा पर जो व्यय हुआ वह शिक्षा पर किए गए कुल व्यय का ०.६ प्रतिशत था। इसमें से सरकार ने ६२% किया, ४.३% स्थानीय समिति ने तथा ३.७% अन्य संस्थाओं ने। यदि प्रौढ़ों को साक्षर बनाने की यह गति क़ायम रही तो प्रौढ़-निरक्षरों को कुल आबादी को साक्षर बनाने में ५,७१,००६४,००० रु० की आवश्यकता होगी। इस आँकड़े में साक्षरता के पश्चात् के कार्य का व्यय सम्मिलित नहीं है। अनुभव से ज्ञात होता है कि साक्षरता की वास्तविक समस्या साक्षरता के पश्चात् की है, अर्थात् साक्षर वयस्कों को फिर से निरक्षर होने से रोकने की समस्या। यदि हम साक्षरता पर किए गए व्यय का ५०% साक्षरता के पश्चात् के कार्य के लिए जोड़ें तो इसके लिए २,८५,५८,३०००० रु० की अतिरिक्त राशि की आवश्यकता है। ये आँकड़े आशा से अधिक हैं,

तथा देश की आर्थिक व्यवस्था की सामर्थ्य से परे हैं परन्तु साक्षरता प्रौढ़-शिक्षा की ओर एक क़दम ही है।

इस समस्या के अतिरिक्त प्रौढ़-शिक्षा का साक्षरता-सम्बन्धी ध्येय अस्पष्ट है। एक ओर तो, निश्चित समय में देश को निरक्षरता से छुटकारा दिलाने पर महत्व दिया जा रहा है। दूसरी ओर, अनुभवानुसार निरक्षरता हटाने का प्रयत्न निरर्थक है। प्रति वर्ष जितने वयस्कों को साक्षर बनाया जाता है उससे कहीं अधिक संख्या में निरक्षरों की वृद्धि हो जाती है। और यह बात भी है कि वयस्कों की रुचि पढ़ने लिखने में नहीं है तो वह समाज-शिक्षा केन्द्र की ओर आकर्षित करने के लिए मनोरंजक कार्य-क्रम की शरण लेता है। वो चल-चित्र, नाटक लोक गीत के रूप में (जो अनौपचारिक शिक्षा देने के लिए उपयोग किए जाते हैं) रूप-वाणी सहायकों का पर्याप्त लाभ उठाता है। यह अच्छा है और प्रशंसनीय है; परन्तु यदि समाज-शिक्षा केन्द्र के आज के मनोरंजनात्मक व सांस्कृतिक कार्य-क्रमों का विश्लेषण किया जाए तो यह ज्ञात होगा कि प्रौढ़ों की शिक्षात्मक आवश्यकताओं से कार्य-क्रम का कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। कार्य-क्रम केवल मनोरंजन के लिए होता है और इसका प्रभाव भी गहरा नहीं होता। वयस्कों के विश्राम के लिए मनोरंजन की महत्ता पर यह कोई आक्षेप अथवा दोष नहीं है। यह तो वयस्कों को शिक्षात्मक आवश्यकताओं को मनोरंजन द्वारा पूरा करने के निमित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षकों अथवा प्रशासकों किसी ने भी मनोरंजन द्वारा प्रौढ़-शिक्षा के कार्य-क्रम के सम्बन्ध में गहन रूप से नहीं विचारा। कार्यकर्ताओं ने इस कार्य-क्रम को विशेष तया इस लिए अपनाया है कि यह एक सुगम विधि है जिसमें वयस्कों की विशेष आवश्यकतानुसार प्रौढ़-शिक्षा के कार्य-क्रम में न्यूनतम परिश्रम करना पड़ता है। जहाँ इस कार्य-क्रम को विस्तार से उपयोग किया जाता है, वहाँ भी न तो यह जन-साधारण की सृजनात्मक प्रवृत्ति को जागृत करने में ही सफल हुआ है और न ही आधुनिक आवश्यकतानुसार पुरातन कार्य-क्रम को नवीन रूप में परिवर्तन करने में। प्रौढ़-शिक्षा के लिए आवश्यक है कि इस कार्य-क्रम के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकें; और सामूहिक अध्ययन, गवेषण, निरीक्षण तथा प्रयोगों द्वारा विचार करें व समाज-शिक्षा के ऊपर किए गए व्यय को न्यायोचित बनाएं।

अब एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि समाज-शिक्षा की वर्तमान-प्रणाली कहाँ तक सफल है। ग्रामों में सामुदायिक योजना प्रशासन के अन्तर्गत

समाज-शिक्षा के विकसित कार्य-क्रम का सम्बन्ध सामुदायिक विकास से माना जाता है। सामुदायिक योजना प्रशासन के जून १९६४ तक के प्रतिवेदन के अनुसार ७,३५३ प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की गई। इनमें प्रशिक्षण के हेतु १०३,४३२ प्रौढ़ थे। इसके अतिरिक्त ७,८३४ मनोरंजन केन्द्र तथा १८, २९६ सामुदायिक मनोरंजक कार्य-क्रमों की व्यवस्था की गई थी। इन पर कुल व्यय १,८५२,४८,००० रु० हुआ। ग्रामीण क्षेत्रों में उनकी विशेष आवश्यकतानुसार ही कार्य-क्रम निर्माण का प्रयास किया जाता है। फिर भी कार्य-क्रम में अनेक त्रुटियाँ हैं। उन्हें आयोजन समिति के मूल्यांकन विभाग के प्रतिवेदन द्वारा जन-साधरण को अवगत करा दिया है। हमारे इस विचार-विमर्श से प्रतिवेदन का निम्न लिखित अंश सम्बन्ध रखता है।

यह अब स्पष्ट है कि जैसे प्रौढ़ साक्षरता महत्वपूर्ण है यह देहाती लोगों में प्रौढ़ों में ज्ञान-प्रचार का अतिउत्तम साधन नहीं है। यदि मनोरंजनात्मक कार्यक्रम स्थानीय जनता के मानसिक व शारीरिक आकर्षण-केन्द्र बनने के योग्य हों तबउ नहें सांस्कृतिक व शिक्षात्मक उद्देश्य के लिए उत्तम साधन मान सकते हैं। इस क्षेत्र में दीर्घ व विशेष प्रशिक्षण प्राप्ति की अपेक्षा विशेष प्रतिभा ही सफलता-सूचक मानी जाती है। यदि दैनिक प्रौढ़ साक्षरता तथा मनोरंजन पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया जाएगा तो समाज-शिक्षा अनुमोदक के विचारों के विपरीत यह शीघ्र ही अपना आकर्षण खो बैठेंगे।

यह हम सब सक्रिय समाज-शिक्षा कार्य-कर्त्ताओं के लिए हल्की फटकार है। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि वयस्कों की आवश्यकता-पूर्ति के लिए शिक्षा के उचित कार्य-क्रम का निर्माण करना आवश्यक है।

सामुदायिक विकास-हेतु प्रौढ़-शिक्षा

समाज-शिक्षा के वर्त्तमान कार्य-क्रम तथा उसकी सीमाओं के ऊपर विचार करलेने के पश्चात् अब हम इस पर विचार करें कि प्रौढ़-शिक्षा कार्य-क्रम को सामुदायिक आवश्यकताओं के अनुसार कैसे बनायें। सामुदायिक आवश्यकताएँ अन्तर्-सम्बन्धी होती हैं। अतएव, यह आवश्यक है कि सामुदायिक विकास के अन्य कार्य-क्रमों के साथ प्रौढ़-शिक्षा कार्य-क्रम भी सम्बन्धित हों। समुदाय के सहकार द्वारा समुदाय का सर्वांगीण विकास ही हमारा अन्तिम ध्येय होना चाहिए।

आरम्भ में, हम बाल-शिक्षा पर विचार करें। पाठशाला जाने के योग्य अवस्था वाले के बालकों को प्राथमिक शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान करने में प्रौढ़-शिक्षा कार्य-क्रम का क्या कर्त्तव्य हो सकता है ? प्राथमिक शिक्षा विकास के वर्तमानस्तर पर हम संविधान के आदेशों का १५ वर्ष तक भी पालन नहीं कर सकते जिन के अनुसार सब पाठशाला जाने योग्य अवस्था के बालकों को शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। ऐसे लाखों बालक हैं जिन्हें प्राथमिक शिक्षा की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं वे निरक्षरों की संख्या में वृद्धि करते जाते हैं। अतएव सामुदायिक विकास के लिए प्रौढ़-शिक्षा का कार्य-क्रम ऐसा होना चाहिए कि आगामी १५ वर्षों में राज्य प्राथमिक शिक्षा-विकास को सर्वाधिक महत्व देने के लिए प्रोत्साहित हों, ताकि वयस्क गण अपने बालकों को पाठशाला भेजने के लिए प्रेरित हों। उन्हें छोटे बालकों की देख-रेख अथवा परिवार की आमदनी में वृद्धि हेतु, जीविकोपार्जन करने के लिए घर पर न रोक लें। अतएव, प्रौढ़-शिक्षा कार्य-क्रम को अपना ध्यान प्रथम वयस्कों की शिक्षा की ओर केन्द्रित करना चाहिए ताकि वे बालकों को पाठशाला भेजने की प्राथमिक महता को समझ सकें। और यह साक्षरता द्वारा ही अनिवार्य नहीं है। यह प्रणाली कम से कम आगामी सन्तति को तो अवश्य ही साक्षर बना देगी। साक्षरता का आज का कार्य-क्रम प्रौढ़ों की वर्तमान आवश्यकताओं या आगामी वयस्कों की होने वाली आवश्यकताओं का स्पर्श भी नही करता।

इसके अतिरिक्त, ऐसे युवकों के लिए जो प्रतिकूल परिस्थिति वश होकर अपनी शिक्षा छोड़ने को बाधित हुए हैं, उनके लिए अतिरिक्त शैक्षिक सुविधाओं की व्यवस्था भी प्रौढ़-शिक्षा को करनी चाहिए। इसके अन्तर्गत युवकों के लिए अनौपचारिक शिक्षा के कार्य-क्रम भी होने चाहिए ताकि वे सदा उन्नति करते रहें और उत्तम माता-पिता, प्राविधिज्ञ व नागरिक बन सकें। यदि समुदाय का सर्वांगीण विकास ही हमारा ध्येय हो तो यह आवश्यक है। दुर्भाग्यवश हमारे विश्वविद्यालय तथा उच्चतर शैक्षिक संस्थाओं ने अभी तक यह आवश्यक नहीं समझा कि युवक तथा अल्प वयस्क प्रौढ़ विभिन्न कार्य परिस्थिति के अनुसार संध्या-कालीन पाठ्य क्रम द्वारा प्रविधिक तथा उच्च शिक्षा का वैध उत्तर दायित्व अपने कंधों पर ले लें। उन्हें चाहिए कि वो कामकाजी जन-साधारण को ऊँचा उठाने के लिए अपने कार्य-क्षेत्र का विस्तार करें।

इसके अतिरिक्त, प्रौढ़ शिक्षा का कार्य-क्रम वयस्कों की आर्थिक व्यवस्था

से सम्बद्ध होना चाहिए। यह देहाती व नागरिक दोनों ही क्षेत्रों में आवश्यक हैं।

व्यक्तिगत सृजनात्मक प्रवृत्ति के विकास हेतु कला तथा शिल्प नाम के उच्चतर गुणों के विकास कार्य-क्रम पर अधिक ध्यान नहीं दिया जा सकता क्योंकि साम्प्रदायिक जीवन की आर्थिक तथा साक्षरता विकास की समस्याएँ अधिक जटिल हैं। साथ ही, हम प्रौढ़ शिक्षा के इस पक्ष की उपेक्षा भी नहीं कर सकते। अन्य सांस्कृतिक समूह तथा संगठन की सहायता द्वारा हम इस कार्य-क्रम का वास्तविकता में कहाँ तक विकास कर सकते हैं यह अभी विचाराधीन है। कुछ भी हो, मनोरंजनात्मक तथा सांस्कृतिक क्रिया-शीलनों के कार्य-क्रमों को सामुदायिक विकास में अपना उचित स्थान निरन्तर कायम रखना चाहिए।

समस्त सम्प्रदायों के निमित्त प्रौढ़-शिक्षा के सार्वलौकिक कार्य-क्रम के अतिरिक्त प्रत्येक समुदाय से सम्बद्ध ऐसे विशिष्ट अंश हैं जिन पर ध्यान देना अनिवार्य है। सामाजिक उन्नति में बाधा डालने वाले अंश जैसे संयुक्त परिवार समूहों का भंग और उसके पारिवारिक सदस्यों पर परिणाम, विभिन्न जातियों, धार्मिक सम्प्रदायों, राजनैतिक समूह, आर्थिक समूह तथा विभिन्न भाषा-भाषी वाले समूह में अन्तर्-सामूहिक तनाव पर उस सम्प्रदाय के साथ कार्य करने वाले प्रौढ़-शिक्षा कार्य-कर्ता को ध्यान देना चाहिए। भिन्न भिन्न समुदायों में उनका ज़ोर व आर्विभाव भिन्न भिन्न होगा। सामुदायिक विकास स्तर के अनुकूल व्यक्ति करण करने की आवश्यकता है।

किसी आबादी के व्याप्त प्रवृत्ति के अनुकूल ही वो सामुदायिक जीवन प्रभावित रहता है। यदि वहां की आर्थिक अवस्था बहुत गिरी हुई है तो ऐसे प्रौढ़ शिक्षा कार्य-क्रम पर महत्व देना चाहिए जो उद्योग में रुचि बढ़ावे तथा औद्योगिक प्रशिक्षण के अवसर प्रदान करें। यदि वहां अधिक भूमि नहीं जोती जाती तो कृषि सम्बन्धी कार्यों को मशीन द्वारा कैसे किया जाता है कतिपय श्रमिकों द्वारा किस प्रकार अधिक से अधिक भूमि बोई जा सकेगी। इस की शिक्षा वहाँ के परिवारों को सहायता देगी इस प्रकार किसी सम्प्रदाय में प्रौढ़-शिक्षा कार्य-क्रम वहाँ की आबादी की अवस्था से सम्बद्ध होना चाहिए।

यही अंश किसी समुदाय को प्रौढ़-जनता के जीवन को प्रभावित करते हैं। कुछ ऐसे अंश भी हैं जो वाह्य-रूप से समुदाय पर असर डालते हैं जैसे

कला-विवरण सम्बन्धी विकास, राजनैतिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय मामले, आर्थिक अवस्था तथा सामाजिक जीवन। कलात्मक उन्नति काल में संसार यथेष्ट संकुचित हो गया तथा जीवन अधिक जटिल बन गया। अतएव, प्रौढ़-शिक्षा कार्य-कर्ता का यह उत्तरदायित्व हो गया है कि वो अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में नए विकास से परिचित रहे तथा समुदाय को ऐसे साधन प्रदान करे कि वहाँ के वयस्क परिवर्तित अन्तर्राष्ट्रीय मामलों से अवगत रहें। भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में पंच-शील सिद्धान्त को स्वीकृत कर लेने से, देश की प्रौढ़-आबादी पर इस उत्तरदायित्व की वृद्धि हो जाती है कि वो अपने को व्यवहार द्वारा भी इस योग्य सिद्ध करे। प्रौढ़-शिक्षा उन्हें इस उत्तर दायित्व को निभाने में सहायक हो सकती है।

कतिपय परामर्श

प्रौढ़-शिक्षा क्षेत्र के कार्य-कर्त्ताओं के लिए निःसन्देह ये उत्तर दायित्व बहुत कठिन है। इसके लिए अधिक प्रतिभा तथा सामर्थ्य की आवश्यकता है। इससे पहले कि क्षेत्र इन भारी उत्तर दायित्वोंको सँभाले, निम्न लिखित कदम उठाने अनिवार्य हैं:—

(i) समाज-सेवा के वर्तमान कार्य को धारणा, दर्शन, कार्यक्रम, कर्मचारी-गण, समाज-शिक्षा में इसका विश्वविद्यालय सम्बन्धी विशिष्ट प्रशिक्षण, वेतन तथा प्रशासन के उचित मूल्यांकन को इसी क्षण हाथ में ले लेना चाहिए।

(ii) प्रौढ़-शिक्षा के विभिन्न पक्षों को मापने के लिए उचित माप-दण्ड। माप-दण्ड के निर्माण के लिए अनुसंधान की आवश्यकता है। साक्षर बनाए गए प्रौढ़ों की संख्या तथा व्यवस्थित मनोरंजनात्मक व सांस्कृतिक कार्य-क्रमों की संख्या से मापने की वर्तमान पद्धति बहुत ग़लत है। वास्तविक परीक्षण तो प्रौढ़ के व्यक्तित्व के विकास तथा सामुदायिक विकास में उसके सहभाग को दृष्टि में रखते हुए प्रौढ़ों के ऊपर पड़े प्रभाव को मापना ही है।

(iii) इस प्रकार निश्चित किए गए माप-दण्ड के अनुसार समाज-शिक्षा कार्य-क्रम का मूल्यांकन। इस कार्य के लिए सामाजिक, वैज्ञानिक तथा अनुसन्धान कर्ता द्वारा आयोजित अखिल भारतीय-संगठन की आवश्यकता है। इस संस्था का कार्य समाज-शिक्षा कार्य-कर्ता की कठिनाइयों तथा सीमाएं

समझने का प्रयास करना है। उसका कार्य है कि वो कार्यकर्ताओं को सामुदायिक आवश्यकतानुसार अपने कार्य-क्रमों तथा कार्यशीलनों के परिवर्तन करने में सहायता देना है। मूल्यांकन समिति को निर्णय करने के लिए नहीं बैठना चाहिए अपितु कार्यकर्ताओं की योग्यता तथा जिस समुदाय में कार्य करते हों उसकी आवश्यकतानुसार उन्हें प्राविधिक सहायता प्रदान करनी चाहिए।

(iv) इस मूल्यांकन के पश्चात्, उस समिति को चाहिए कि समाज-शिक्षा के समस्त कार्यों का एकीकरण करे और उनको एक नियमित रूप दें। बिना अल्प समस्याओं को सुलझाए पृथ्वी को पार कर लेने की इच्छा से इस क्षेत्र का केवल विनाश ही होगा। आगामी वर्ष के लिए तो विस्तार की अपेक्षा कार्य को अधिक ठोस बनाना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

(v) वर्तमान कार्य-प्रणाली जिसके अन्तर्गत सरकारी संस्थाएं समाज शिक्षा को चलाने का कार्य-भार स्वयं लेती हैं बहुत दूषित है। प्रौढ़-शिक्षा कार्य-क्रम के विकास हेतु यदि सामुदायिक विधि अपनानी है तो इसके विकास के लिए नौकर शाही प्रशासन पद्धति लाभदायक नहीं है।

सरकारी अधिकारियों के अनेक प्रयास करने के उपरान्त भी, एक ओर लाल फ़ीते में तथा दूसरी ओर राजनैतिक दबाव के कारण वो उचित मार्ग खो बैठते हैं। इस कार्य के लिए हमें मैसूर प्रौढ़-शिक्षा समिति का अनुकरण करना चाहिए जिसने सरकारी वित्त तथा सार्वजनिक सहकार से, स्वचालित स्वतन्त्र मण्डल निर्मित किया। देश के विभिन्न भागों में प्रौढ़-शिक्षा का विकास ही इस मण्डल का ध्येय है।

इन सबके लिए पर्याप्त धन तथा उपयुक्त कर्मचारीगण की आवश्यकता है। इस कार्य के लिए उपलब्ध धन-राशि सीमित होती है अतएव यह उचित होगा कि भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य-क्रमों और समुदाय की प्रौढ़-आबादी के निमित्त शिक्षात्मक साधन प्रदान करने के लिए कुछ चुने हुए क्षेत्रों को ही हम अपने क्रिया-शीलनों का केन्द्र बनाएं। और इस प्रकार एक आदर्श-योजना निर्माण का प्रयोग करें। प्रशिक्षित योग्य कर्मचारीगण के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि प्रौढ़-शिक्षा आन्दोलन में कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण का कार्य-क्रम सबसे अधिक अनुन्नत रहा है। प्रशिक्षण अवधि ५ सप्ताह से ५ मास तक होती है। प्रशिक्षण के सम्बन्ध में हमारे विचार अस्पष्ट हैं। हम प्रत्या-

स्मरण शिक्षण-क्रम (refresher course) और नियमित शिक्षण को एक दूसरे से पृथक नहीं कर पाए। जब तक इन दोनों में भेद नहीं कर पाएंगे प्रौढ़-शिक्षा की उन्नति की कोई आशा नहीं है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि समाज-शिक्षा को प्रचलित करने की पहली मंज़िल हम पार कर चुके हैं। इस योजना के विभिन्न क्रिया-शीलनों का एकीकरण करके तथा प्रौढ़-शिक्षा के विभिन्न पत्रों के प्रभाव का अनुमान लगाने के हेतु अनुसन्धान के उचित कार्य-क्रमों का विकास करके, कार्य को ठोस बनाने की दूसरी मंज़िल पार करना इस आन्दोलन का कार्य है। यदि हम अब तक किए गए कार्य का एकीकरण तथा मूल्यांकन न करें, यह सम्भव है कि भविष्य में हम केवल प्रचार में ही लगे रहें तथा लोक-तन्त्रीय शिक्षा क्षेत्र में प्रौढ़-शिक्षा केवल एक दिखावा रह जावे।

मेहर सी० नानावती

IAEA'S Latest Publications

Role of Adult Education in Community Development ... Price Rs. 1/8

Samaj Siksha me Manoranjan va Sanskritik Karya ... Price As. 12

Usual discount to Members of IAEA

Can be had of

The Indian Adult Education Association

30, Faiz Bazar,

Delhi

प्रौढ़-शिक्षा में साक्षरता

प्रौढ़-शिक्षा एक ऐसा मार्ग है जिसका अन्त नहीं है। यह तब तक चलता रहेगा, जब तक जीवन है, क्योंकि आधुनिक जीवन में यह एक ऐसा तत्त्व बन गया है, जिसका महत्त्व उन लोगों के लिए उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है, जो अपने जीवन-काल में सचमुच जीवित रहना चाहते हैं।

प्रारम्भ—एक समय था जब स्त्री और पुरुष अपने हाथ में डिप्लोमा लेकर विश्व-विद्यालय से निकलते थे और यह समझते थे कि ऊनकी शिक्षा पूर्ण हो गई। उन डिप्लोमाओं को जड़ कर दीवारों पर लटकाया जाता था किन्तु १९वीं शताब्दी के पिछले और २०वीं शताब्दी के पूर्व-भाग ने शिक्षा के सम्बन्ध में यह रूढ़-धारणा बदल दी। वैज्ञानिक ज्ञान का विकास होने लगा। यह दर्शाया गया कि जीवन को और अधिक सुरुचिपूर्ण और अच्छा बनाया जा सकता है। यह भी दर्शाया गया कि शारीरिक श्रम के साथ आत्म-विकास के उद्देश्य से ज्ञान और अवकाश भी जोड़े जा सकते हैं। इन सब तथ्यों के प्रकाश में अमेरिका और योरूप के देशों में एक नए प्रकार की जीवित शिक्षा के लिए प्रौढ़ों को संगठित करने के प्रयत्न किए गए। ये प्रयत्न इतने लाभ-दायक सिद्ध हुए कि इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

मेहनती स्त्री-और पुरुषों ने अपने विकास के लिए और बदलती हुई विचार-धारा के अनुसार अवकाश निकालना प्रारम्भ किया है। कृषि की नई पद्धति से जीवन एक दम पहले से अधिक निर्बन्ध और प्रचुर हो गया। रसोई को नई पद्धति से और साफ़-सुथरे ईंधन के उपयोग से उनके परिवारों को स्वास्थ्य प्राप्त हुआ और वे अधिक लम्बे जीवन तक सुख उपभोग करने में समर्थ हुए। शिशु-पालन की नई पद्धति से चतुर माताओं को अधिक अवकाश प्राप्त होने लगा तथा इस नए ज्ञान के प्रकाश में अध्यापक और माता-पिता मिलकर सामुदायिक विकास की चर्चा करने लगे।

जैसे समुदाय के प्रौढ़-मस्तिष्कों में नए जीवन ने प्रवेश किया उसके साथ पुरानी रूढ़ियाँ और अन्ध-विश्वास समाप्त हो गए। समुदाय ने नए ढंग की परिकल्पना आरम्भ की। इस नए ज्ञान के दूर-दर्शी यन्त्र ने दूरस्थ व्यक्तियों को समीप ला दिया और अनुसन्धानों के द्वारा इन प्रौढ़ों को अपने

ही सरीखे व्यक्तियों से बने हुए विश्व-समुदाय को देखने का अवसर मिला दृष्टि का विकास हुआ। राज्य और राष्ट्र उनके लिए अब केवल बड़े समुदाय रह गए।

नए क्षितिज या नई दृष्टि—ये सब प्रयत्न साक्षर व्यक्तियों द्वारा साक्षर व्यक्तियों के लिए हुआ! जैसे समुदाय अपने प्रति सजग हुए दूर-दर्शी यन्त्र समुदाय की ओर घूम गया और उसे पता चला कि समुदाय में ऐसे (निरक्षर व्यक्तियो की) बहुत बड़ी संख्या है जो द्वारा अग्रगामी आन्दोलन में योग्यता-पूर्वक भाग लेने में असमर्थ हैं।

प्रौढ़-शिक्षा ने एक और मोड़ लिया। और निरक्षर व्यक्तियों को उनकी अपनी भाषा को पढ़ने और लिखने की शिक्षा दी जाने लगी। कार्य-क्रम का यह भाग कितना व्यापक था और इतना आवश्यक था कि आज भी बहुत से व्यक्ति प्रौढ़-शिक्षा से यही समझते हैं कि उसका उद्देश्य निरक्षर व्यक्तियों को सामान्य लिखना-पढ़ना और हिसाब जोड़ना सिखाना है।

प्रौढ़-व्यक्ति सामुदायिक विकास में तब-तक कभी भी वास्तविक रूप से भाग नहीं ले सकते जब तक कि वे सामुदायिक वाद-विवाद में अपनी उन प्रति-क्रियाओं की चर्चा न कर सकें जो उन्होंने अपनी पढ़ाई और ज्ञानोपार्जन द्वारा प्राप्त किए हैं। जब तक समुदाय का एक अंग—निरक्षर अंग—उसके दूसरे अंग—साक्षर अंग—पर निर्भर रहेगा तब तक स्वतन्त्रता की भावना जाती रहेगी।

दूसरों के लिए पत्र लिखने वाला ऊँच-नीच की कल्पना को बढ़ाता हुआ डाक-खाने के दरवाज़े के बाहर बैठा ही रहेगा। नए प्रौढ़ों को अपनी भाषा को पढ़ने लिखने और समझने का अवसर चाहिए और उसे इतना गणित आ जाना चाहिए कि वह अपनी फ़सल का हिसाब-किताब रख सके और समाचार पत्रों में बाज़ार का भाव पढ़ सके। हाल में एक वार्तालाप के मध्य सामाजिक शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले एक अध्यापक ने प्रौढ़-शिक्षा के सम्बन्ध में यह कहा "आगामी दस वर्षों तक प्रौढ़ों को पढ़ाने के लिए किसी प्रकार का समय धन और उत्साही व्यक्ति लगाने की आवश्यकता नहीं है। प्रौढ़ों को अच्छे ढंग की खेती के उपाय बताइये। साफ़-सुथरा और सफ़ाई से रहना सिखाइये। अच्छा खाना दीजिए। उनके स्वास्थ्य में वृद्धि कीजिए और वे दस वर्षों के भीतर स्वमेव अपने बच्चों को स्कूल भेजना चाहेंगे।" लेकिन

क्या वे ऐसा करेंगे। मुझे लगता है यह एक बड़ा ख़तरनाक प्रयोग होगा। यह हो सकता है कि उन्हें अच्छा खाना देने से और उनके स्वास्थ्य में वृद्धि करने से वे समझें कि उनके बच्चों को कोई नुकसान तो होगा नहीं और यदि बच्चे और माता-पिता दोनों काम करें तो परिवार को आर्थिक दृष्टि से लाभ होगा लेकिन प्रजातन्त्र के इन नए नागरिकों के भाग्य का निर्णय करने वाले हम कौन हैं।

व्यक्तिगत रूप से मैं समझती हूँ कि हम दस वर्ष तक नहीं ठहर सकते। यदि हम ऐसा करेंगे तो हम देश को एक शक्तिशाली नेतृत्व से वंचित करेंगे। बहुत से नेताओं ने २० वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद पढ़ना और लिखना सीखा है। भारत के ग्रामों में शक्तिशाली अब्राहिम लिङ्कन और महात्मा गाँधी भरे पड़े हैं। और इसी प्रकार इन शान्त ग्रामों में बहुत सी सरोजिनी नायडू पड़ी हैं। ये सब व्यक्ति निरक्षरता के ऐसे पर्दे की आड़ में छिपे हुए हैं। जिसे वे अपने हाथ से नहीं फाड़ सकते। उन्हें सहायता की आवश्यकता है।

स्त्रियों के कार्य

जब तक अधिकतम स्त्रियाँ विशेषतया अल्प वयस्क, माताएँ निरक्षर रहेंगी, ग्राम के अन्दर के ढाँचे में परिवर्तन नहीं आएगा। सदियों से, समस्त सँस्कृति तथा सभ्यताओं में स्त्रियाँ निरन्तर मनोवैज्ञानिक अंश रहीं हैं। उनके द्वारा ही आगामी सन्तति ने उसकी परम्पराएं, धार्मिक प्रवृत्तियाँ तथा मत ग्रहण किए। क्योंकि धर्म एक ऐसी वस्तु है जो इतनी सिखाई नहीं जाती जितनी पायी जाती है। प्रजाति की माताएँ आगामी सन्तति के निकटतम होती हैं, अतएव उन्हें जिसमें विश्वास होता है अपनी सन्तति को भी ग्रहण कराती हैं—न अधिक, न कम। परिवर्तन लाने के लिए भी वे ही सर्वाधिक प्रभावशाली होगीं। माताओं को प्रोत्साहित करना चाहिए, विशेषतया अल्पवयस्का माताओं को। और जब वे स्वयं अपनी सन्तानों के लिए द्वार खुले देखेगीं, तब वे आवश्यक परिवर्तन लाने के लिए उचित बलिदान करेगीं।

कुछ सप्ताह पहले मैं हाशिमपुर ग्राम के एक मेले में गई। हाशिमपुर इलाहाबाद के निकट है। मैंने १८ वर्ष की एक माँ को साक्षरता का सार्टिफ़िकेट दिया। वो ८ मास से उस ग्राम में साक्षरता की कक्षाओं में अध्ययन कर रही थी। एक वर्ष पहले वो अपना नाम भी नहीं लिख सकती थी। और

अब वो अपने संयुक्त परिवार के सारे हिसाब-किताब रखती है। जब उसने मुझे "शाक-सब्ज़ी का बग़ीचा" पुस्तक, जिसे वह तब पढ़ रही थी, दिखाई तो उसका चेहरा आनन्द से दमक रहा था। उसने भी ऐसा एक बाग़ लगाना आरम्भ कर दिया था।

परम्पराएँ

ऐसा चतुर व्यक्ति संसार में मिलना कठिन होगा जो प्राथमिक पाठशाला में विश्वास न रखता हो, चाहे वो परम्परागत पद्धति का हो अथवा बुनियादी शिक्षा का। देहातों के बच्चों की शिक्षा ही हरेक देश का एक आधार-भूत है। परन्तु प्राथमिक पाठशाला के विद्यार्थी कभी भी अपने देहात के न तो आन्तरिक ढाँचे में ही परिवर्तन करेगा और न ही मानसिक दृष्टि-कोण में। उसके माता-पिता के हाथ में सारी शक्ति रहती है तथा परम्पराएं उसकी शासक हैं। एक प्रगतिशील छात्र के समक्ष केवल दो मार्ग हैं: या तो वह पूर्णतया परिस्थितियों के सामने झुक जाता है या वह विद्रोही बन जाता है तथा गृह त्याग देता है।

हाल में ही देहात के एक युवा अध्यापक ने जो इण्टरमीजियेट पास था, तीन मास का पेशगी वेतन मांगा। इतना अधिक धन माँगने का कारण पूछे जाने पर उसने उत्तर दिया, "मुझे अपनी पुत्री के विवाह के लिए चाहिए।" "लेकिन तुम्हारी पुत्री की अवस्था क्या है?" मैंने पूछा—"लेकिन मेरे मित्र, तुम तो नई शताब्दी के हो; तुमने विस्तार पाठ्य-क्रम का अध्ययन किया है; तुमने साक्षरता केन्द्र में पढ़ा है; देहातों का ढाँचा परिवर्तन करने में तुमने योग दिया, निसन्देह तुम अपनी तेरह वर्षीया कन्या का विवाह करना नहीं चाहोगे। तुम्हें याद है गाँधी जी ने कहा था कि "ऐसे विवाह बहुत बड़ी भूल हैं?"

"हाँ" उसने दु:खी स्वर में कहा, "लेकिन जब तक मेरे पिता जी जीवित हैं, वे आज्ञा देते हैं और मैं उसका पालन करता हूँ।" अतएव उस कन्या का पाणिग्रहण हो गया। अल्प-व्यस्क पिता ने परम्पराओं के सम्मुख सिर झुका दिया था।

सबके लिए एक ही स्कूल

अल्प वयस्क माँ-बाप के लिए आवश्यक है कि वे अपने बालकों के साथ साथ और एक ही अध्यापक से पढ़ें।

इसी पद्धति पर लखनऊ से ७,८ मील की दूरी पर कुछ प्रयोग किए जा रहे हैं। अध्यापक गण पढ़ाने की प्रविधि में भली-भाँति प्रशिक्षित तथा अनुभवी आदमी हैं। उनके पास विभिन्न प्रकार के रूप-सहायक तथा पुस्तकालय है। वे प्रारम्भिक कक्षाओं के अध्यापक नहीं हैं, परन्तु उन्होंने बालकों को शिक्षा देनी भी सीखी है। वे बालकों को चार घण्टे तथा पुरुषों को दो घण्टे प्रतिदिन पढ़ाते हैं। और अध्यापिकाएँ स्त्रियों को दो घण्टे पढ़ातीं हैं, और यदि माताओं को घर से अधिक अवकाश नहीं मिलता तो केवल एक ही घण्टा। प्रधान अपना घर खोल देता है। लालटेनों के लिए तेल देता है। वहाँ नव-साक्षरों के लिए प्रोत्साहन-प्रद पुस्तकें पढ़ी जातीं हैं और उन पर सामूहिक तर्क-वितर्क होता है। इन में से कुछ ग्रामों में इस प्रयोग के संचालक यह जानने की चेष्टा कर रहे हैं कि साक्षरता आन्दोलन का यहाँ क्या प्रभाव पड़ा है। जब इन ग्रामों के सारे निवासी साक्षर हो जायेंगे तो समुदाय में क्या-क्या परिवर्तन आ जायेंगे?

देहाती गण इस पर विचार-विमर्श कर रहे हैं कि कौन सी परम्पराएँ तथा रीतियाँ गहन सांस्कृतिक मूल्य की हैं। किन पराम्पराओं को रहने देना चाहिए और कौन-सी बदल देनी चाहिए। देहातियों से ही इन सब बातों को मालूम करना चाहिए।

अब हमें स्पष्ट विदित होता है कि सामुदायिक विकास कैसी महान् वस्तु है परन्तु सार्वजनिक आन्दोलन से ही उसकी शाखाएँ फूटनी चाहिए। कोई वास्तविक परिवर्तन ज़बरदस्ती नहीं लाए जा सकते हैं। जब यह सार्वजनिक आन्दोलन भली-भाँति उन्नति कर लेगा तो यह दावानल की भाँति ग्राम-ग्राम में फैलेगा; जब तक कि सभी ग्राम स्वयं आगे न बढ़ने लगें। चाहे वह साक्षरता हो; चाहे स्वच्छता; चाहे खेती-बाड़ी हो या हिसाब-किताब— ये सभी प्रयास असफल रहेगें जब तक कि ये कार्य जनता की इच्छा और सहयोग से न किए जाएँ।

सामुदायिक विकास और सब प्रगतिशील विशाल योजनाओं में वृद्धि हो जाएगी यदि समाज-शिक्षा द्वारा सिखाई गई अन्य अच्छी बातों के साथ-साथ बालकों तथा उनके अल्प-वयस्क माता-पिता को भी पढ़ना, लिखना तथा हिसाब सिखाया जाए।

वो कहाँ है ?

भारत के किसी देहात में कहीं एक दस-वर्षीय बालक रहता है। आज से पैंतीस वर्ष पश्चात् वह इस देश का प्रधान मन्त्री बनेगा। यदि हमें उसका नाम विदित हो जाता, उसके माता का नाम या उसके ग्राम का नाम, तो उस बालक की परिस्थितियों को सुधारने के लिए हमें कितने सामुदायिक परिवर्तन की चेष्टा करनी चाहिए थी। उसके माता-पिता को कौन सी शिक्षा तथा संस्कृति के मध्य में रखा जाता। जहाँ तक बालक का सम्बन्ध है, हमें उसको अत्युत्तम पारिवारिक जीवन देना चाहिए और अत्युत्तम विद्यार्थी जीवन। संस्कृति, योजना और धन ये जितना उत्तम सामुदायिक जीवन दे सके उसे प्रदान करना चाहिए। परन्तु दुर्भाग्य-वश हम उसका नाम नहीं जानते। उसके माँ-बाप का नाम नहीं जानते, और न ही उसके देहात का नाम जानते हैं। अतएव, सामुदायिक विकास के प्रयास में, हमें चाहिए कि हम सब बच्चों के माता-पिताओं को अत्युत्तम प्रौढ़-शिक्षा दें ताकि ये माता-पिता ही बाद में नए समुदाय का निर्माण कर सकें।

श्रीमती बैल्दी फ्रिशर

प्रौढ़-शिक्षा नई सभ्यता की जन्मदात्री

अर्ध-विकसित समुदाय व्यक्तियों के आत्म-विकास के मार्ग में बहुत बाधाएँ उपस्थित करते हैं। पिछड़ा हुआ प्राविधिक विज्ञान, विषय सामाजिक सम्बन्ध और पुरानी सामाजिक रूढ़ियाँ सब मिल कर ऐसी सामाजिक आर्थिक दुरवस्था उत्पन्न करती हैं जो समाज द्वारा व्यक्ति को आर्थिक सुरक्षा और सामाजिक महत्व प्रदान करने के मार्ग में बाधक बनती है। सामुदायिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा इन बाधाओं को पैदा करने वाली विवशताएँ दूर की जाती हैं।

ऐसे समाज के अन्तर्गत सामुदायिक विकास के क्षेत्र में प्रौढ़-शिक्षा का यह काम है कि वह सामुदायिक विकास की इस प्रक्रिया को समझने में बाधक बनने वाले बौद्धिक और भावनात्मक कारणों को देखें और उन्हें दूर करें। दूसरे शब्दों में प्रौढ़-शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह सामुदायिक विकास की प्रक्रिया के लिए एक समुचित मानसिक वातावरण तैयार करे ताकि वह लोगों में जड़ पकड़ सके। इसका यह भी अर्थ हुआ कि वह उन सामाजिक प्रचलनों और विचार की आदतों को समाप्त करने का प्रयत्न करें जो सामुदायिक विकास के लिए आवश्यक सिद्धान्तों का हनन करतीं हों इसके अतिरिक्त इसका यह भी काम है कि समाज का एक समुचित सांस्कृतिक ढाँचा बनाए जिससे इस प्रक्रिया को निरन्तर बल मिल सके।

प्राविधिक विज्ञान सम्बन्धी उन्नति के लिए सामाजिक शिक्षा

अर्ध विकसित देशों में साधन सामग्रियों की कमी निश्चय ही मूल-भूत समस्या होती है। यह कमी मुख्य रूप से इसलिए होती है क्योंकि उत्पादन की पद्धति (जो भले ही औद्योगिक हो और कृषि सम्बन्ध हो) में प्राविधिक विज्ञान सम्बन्धी प्रगति सीमित साधनों से बढ़ती हुई अपेक्षा को पूरा करने में पीछे रही है। अतः इस समस्या को सुलझाने के लिए प्राविधिक विज्ञान सम्बन्धी माप दण्ड को सुधारना आवश्यक है, ताकि उससे उत्पादन में कृषि का निश्चय किया जा सके। परिणामतः यह तथ्य सामुदायिक विकास के

किसी भी कार्य-क्रम का एक महत्व-पूर्ण अंग बन जाता है। प्रौढ़-शिक्षा का काम है कि वह इसे एक शिक्षण समस्या के रूप में समझे और मानव-मस्तिष्क को प्राविधिक ज्ञान सम्बन्धी परिवर्तन ग्रहण करने के लिए तैयार करे।

किसी भी प्राविधिक परिवर्तन के लिए, यह बात पहले स्वीकार की जाना चाहिए कि यह परिवर्तन सम्भव है और मौलिक घटनाओं को समझना और नियन्त्रण करना मनुष्य की शक्ति के भीतर है। अर्द्ध-विकसित समाजों में प्रायः ऐसा विश्वास नहीं होता और यह प्राविधिक विज्ञान सम्बन्धी परिवर्तन के लिए मनुष्य को अनुकूल प्रोत्साहन से वंचित रखता है। इसके अतिरिक्त एक और बात है कि जीवन का ढाँचा इतिहास और उन आदर्शों की देन है जिनका सम्बन्ध चाहे सामाजिक व्यवहार या व्यावसायिक प्रचलन से हों और जो परम्पराओं के द्वारा मान्यता और रीति-रिवाज़ के करण न्याय-संगता प्राप्त कर चुका हो इसलिए नवीनताओं का समावेश के लिए इस ढांचे के किसी एक ही भाग को बदलना आवश्यक नहीं वरन् समूचे ढचे को बदलने की आवश्यकता है अतः पूर्ण परिवर्तन ही हो सकता है और काम चलाऊ परिवर्तन नहीं। अतः यदि प्राविधिक विज्ञान सम्बन्धी परिवर्तन ने समावेश व सफलता प्राप्त करनी है, तो प्रौढ़-व्यक्ति की मान्यताओं में—भले ही वे तथा सचेतन व अर्द्ध-सचेतन हों—उन मान्यताओं के पुनर्मूल्यन की आवश्यकता है, जिनके आधार पर उस व्यक्ति की आस्थाएँ खड़ी हैं और जो उसके दिन-प्रतिदिन के जीवन-व्यवहार में उसका मार्ग प्रदर्शन करते हैं। यही है वह दृष्टि जो प्रौढ़-शिक्षा कार्य-कर्त्ता के सम्मुख सदैव रहनी चाहिए और जिसे उसका मार्ग दर्शन करना चाहिए। भारत में सामुदायिक विकास के कार्य-कर्मों का मूल-भूत उद्देश्य हमारी दृष्टि में परिवर्तन करना यह घोषित किया गया था और इस परिवर्तन को लाने की ज़िम्मेदारी का माध्यम सामाजिक शिक्षा संगठन-कर्त्ता को माना गया। व्यवहार में सामाजिक संगठन-कर्त्ता का क्या कार्य और कर्त्तव्य है इसके सम्बन्ध में अभी विवाद चलता है और अब तक प्राप्त अनुभवों के प्रकाश में इसकी स्पष्ट परिभाषा करने की आवश्यकता है।

प्रारम्भ में समाज-शिक्षा संगठन-कर्त्ता के कार्य की स्पष्ट व्याख्या की गई थी। समाज शिक्षा की पुस्तिका में यह मोटे रूप में कहा गया था कि वह

अपने आपको उस कार्य में लगाएगा जिससे ग्रामीण अपनी मद्द स्वयं करना सीख सके। इसी की पुष्टि में डा० राधाकृष्णनून के ये शब्द अवतरित किए गए थे। "वह कोई भी काम अच्छा नहीं है जो स्वयं नहीं चुना जाता; वह कोई भी संकल्प मूल्यवान नहीं है जो स्वयं नहीं किया जाता।" समाज-शिक्षा संगठन-कर्त्ता का काम इस धारणा को ग्रामीणों तक पहुँचाना था पुस्तिका में उसका क्या कार्य-क्षेत्र होगा या बताया गया था और उसकी कार्य-सूची में उसके कर्त्तव्य गिनाए गए थे। समय व्यतीत होने पर यह देखा गया कि सामुदायिक विकास के बड़े उद्देश्यों को दृष्टि से उसके कार्य अनावश्यक थे अथवा महत्व से रहित थे। वे अनावश्यक इसलिए थे क्योंकि उसके कार्य-कलाप वही थे जो अन्य प्रसार कार्य-कर्त्ताओं के थे। दूसरे कार्य-क्रम मूल्यांकन प्रतिवेदन में कहा गया कि कुछ समाज-संगठन कार्य-कर्त्ता इस बात में विश्वास रखते हैं कि जहाँ किसी प्रदर्शन को दिखाना कृषि निरीक्षक का काम है वहाँ उनका काम यह है कि वे उस प्रदर्शन के लिए लोगों को तैयार करे और उसके मूल्य के सम्बन्ध में लोगों में विश्वास पैदा करें। किसी काम को कैसे करना है और क्यों करना है इन दोनों बातों के बीच अन्तर करना भले ही विचार के धरातल पर उचित लगे, किन्तु व्यवहार में सम्भव है कि वह असफल रहे। वे महत्व से रहित इसलिए थे क्योंकि समाज-शिक्षा संगठन कर्त्ता के कार्य-कलाप वे दैनिक सामान्य कार्य बन गए थे जैसे साक्षरता, मनोरंजन और सांस्कृतिक कार्य-कलाप जिनका विकास कार्य-क्रम पर कोई सीधा प्रभाव नहीं पड़ता था और इसलिए भी वे महत्व रहित थे, क्योंकि समाज-शिक्षा के अन्तर्गत चलाए जाने वाले कार्य-क्रम की सीमा और विविधता इतनी अधिक थी कि यह लगता था कि कोई भी चीज़ जो मनोरंजन और प्रचार के अन्तर्गत आए वह समाज-शिक्षा का उपयुक्त कार्य-क्रम बन सकती थी। और समाज-शिक्षा संगठन-कर्त्ता के कार्य-कलाप उद्देश्य और दृष्टि दोनों से विहीन थे।

इन परिस्थितियों में समाज-शिक्षा संगठन कार्यकर्ता सामुदायिक विकास कार्य-क्रम के सामने आने वाली निर्दिष्ट समस्याओं को ले सकता है। कार्य-कलाप के किन स्पष्ट कार्य-क्रमों में वह अपने को लगा सकता है।

पहले उसका मूल भूत कार्य यह है कि वह सामुदायिक योजना कार्य-क्रम के विचार-वाहक के रूप में कार्य करे। वास्तव में सामुदायिक विकास

कार्य-क्रम की विचार धारा किसी सैद्धान्तिक सामाजिक उद्देश्य से सम्बन्धित नहीं है वरन् एकदम स्पष्ट है और वह यह कि उसका उद्देश्य लोगों को यह समझने में मदद करना है कि परिस्थितियों पर मनुष्य का नियंत्रण है। उसे यह समझना चाहिए कि यदि उसे इसमें सफल होना है तो उसे उन मूल्यों के आधार का सामना करना होगा जिनसे लोगों के वर्तमान जीवन को मार्ग-दर्शन मिलता है। इसे यदि और स्पष्ट शब्दों में कहें तो समाज-शिक्षा संगठन कर्ता का काम सामुदायिक विकास कार्य-क्रम के लिए आवश्यक विचार-धारा तैयार करना है।

इस दृष्टि से यदि देखें तो उसकी कार्य-सूची का नया अर्थ हो जाता है साक्षरता उसका मूल-भूत कार्य नहीं रहता। मनोरंजनात्मक और सांस्कृतिक कार्य-कलाप पृथक कार्य नहीं मालूम होते वरन् इसी विचार-धारा के वाहक माध्यम मालूम होते हैं। अन्य सामुदायिक योजना कार्यकर्ताओं के प्रसार कार्य सार्थक मालूम होते हैं क्योंकि वे अलग से जानकारी देने के माध्यम नहीं रह जाते वरन् वह एक बड़े तत्वज्ञान से उत्पन्न होते हैं और जुड़े रहते हैं और इस प्रकार समाज-शिक्षा संगठनकर्ता लोगों को कार्य-क्रम के महत्व को समूचे रूप में देखने में सहायता करता है। इसी स्थिति में आत्म-संकल्प सम्भव है यही दृष्टि समाज-शिक्षा संगठनकर्ता में उसके प्रशिक्षण काल में भरी जानी चाहिए। अपने बौद्धिक साधनों और मौलिकता से अपेक्षा रखने वाली माँगों की पूर्ति के लिए उसे बौद्धिक साधन सामग्री भी चाहिए। इसलिए समाज-शिक्षा संगठनकर्ता के प्रशिक्षण के कार्य-क्रम पर उसकी सफलता आधारित है और वही सारे सामुदायिक विकास के कार्य-क्रम कार्यकर्ताओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए बनाया जाना चाहिए जिसका काम लोगों को कुछ नई निपुणताएं देना ही नहीं है बल्कि उससे ज़्यादा जिसका काम उन कुछ पुराने मूल्यों के स्थान पर नए मूल्य प्रदान करना है जिनके कारण लोगों की आस्था इस बात में कम हो गई है कि उनका अपनी परिस्थितियों पर नियंत्रण है। प्रशिक्षण के कार्य-क्रम के द्वारा यह मौलिक आस्था कार्य-कर्ता में भर दी जानी चाहिए नहीं तो अन्य लोगों में किस प्रकार आस्था उत्पन्न कर सकता है। इसके अतिरिक्त उस प्रशिक्षण के कार्य-क्रम में प्रक्रिया के उन सिद्धान्तों का भी समावेश रहना चाहिए जिन्हें वह आगे चलकर लोगों को समझाएगा। इसीलिए उदाहरण के रूप में यदि

कार्य-कर्ता और प्रशिक्षित के बीच के सम्बन्ध किसी अधिकार-पूर्ण व्यवहार संहिता पर आधारित रहते हैं तो उससे उस कार्यकर्ता को जब वह मैदान में काम करने उतरेगा तो लोगों को उसे अपनी बात मनवाने में मदद नहीं मिलेगी। इसके निश्चय के लिए प्रशिक्षण के ढंग ऐसे होने चाहिए जिनसे कार्यकर्ता में समुचित मूल्य और रवैयों के विकास में मदद मिले। प्रशिक्षण की पद्धति में भाषण की बजाए वाद-विवाद के ढंग पर महत्व दिया जाना चाहिए।

सामाजिक शिक्षा और सामाजिक मूल्य

आज भारतीय समाज के सामने जितनी समस्याएं है उनमें सबसे जटिल पुराने सामाजिक परम्पराओं की समस्या है। अतीत में जाति-भेद की प्रथा का कोई भी औचित्य रहा हो, लेकिन आज यह समझा जाता है, वह एक सही सामाजिक व्यवस्था का मार्ग पथ-भ्रष्ट करती है। सामाजिक प्रथा के रूप में यह असंगत है और सामान्य सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वह मानवीय साधनों को आगे आने से रोकती है। सामाजिक मूल्यों की पद्धति की दृष्टि से यह और भी विनाशकारक है। यह विश्व-व्यापी सामाजिक उद्देश्यों की धारणाओं को नहीं बनने देती और नागरिक तथा राजनैतिक उत्तरदायित्वों की दृष्टि को ख़राब करती है। इसका परिणाम यह होता है कि नागरिक और राजनैतिक शक्ति सामाजिक विकास की ओर न जाकर बिगड़ने लगती है क्योंकि साम्प्रदायी महत्वकांक्षा राजनैतिक निर्णयों की माप दण्ड बन जाती है न कि सामाजिक भलाई के विचारों की।

सामाजिक वैज्ञानिकों ने जिन्होंने जाति-भेद प्रथा की उत्पत्ति और उपयोगिता की चर्चा की है, यह बताया है कि यह प्रथा न केवल भारत के लिए अनुपयोगी ही है वरन् निश्चित रूप से आज की सामाजिक आवश्यकताओं के साथ मेल नहीं खाती। वो यह भी बताते हैं कि जिस आर्थिक पृष्ठ भूमि में जिस प्रथा का जन्म हुआ था वह आज भी विद्यमान नहीं है। और जिन शक्तियों ने इसे इसकी विषमताओं के बावजूद भी जीवित रखा उनके स्थान पर आज ऐसी शक्तियाँ पैदा हो रही हैं जो उसे विघटित कर रहीं हैं। सामाजिक वैज्ञानिकों का विचार है कि इन परिस्थितियों में जाति-भेद की प्रथा के विरुद्ध उन कारणों के साथ लड़ाई करना चाहिए जो उसे बल दे

रहे हैं। दूसरे शब्दों में इस समय शिक्षा पर ज़ोर दिया जाना चाहिए। विशेष रूप से प्रौढ़ शिक्षा पर जो व्यक्तियों को इस योग्य बनाएगी कि वे निरर्थक बातों को छोड़ सकें और उपयोगी बातों को ग्रहण कर सकें।

इसलिए व्यवहार में प्रौढ़-शिक्षा को उस भावनात्मक और सांस्कृतिक पृष्टभूमि को समझना होगा जो इस विनाशकारी सामाजिक प्रथा को बल दे रही है और सामाजिक व्यवहार के स्वस्थ आदर्शों का निर्माण करना होगा।

यद्यपि आज भारत की अधिकांश जनता में वर्णाश्रम धर्म के प्रति कोई आस्था नहीं रही है फिर भी इतिहास उसके साथ है और इसके कारण कदाचित् भारतीय मस्तिष्क में जाति-भेद समाया हुआ है। जिन धर्मों में सैद्धान्तिक रूप से जाति भेद को स्वीकार नहीं किया गया है उनमें भी जाति-भेद की धारणाएं आ गई हैं। भारतीय मस्तिष्क को ऐसा लगता है कि समाज स्पष्ट रूप से एक जाती की एक प्रथा है। इस मान्यता से लोगों को मुक्त करने के लिए यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह प्रथा किसी एक सामाजिक घटना या अवस्था के साथ जुड़ी हुई है। भारतीय समाज के इतिहास के कई भाग हैं। और एक समय था जबकि जाति-प्रथा केवल कार्य के निर्वाह-भाग के लिए थी और परिणामतः इतनी अधिक जटिल और अपरिवर्तनीय न थी। प्रौढ़-शिक्षा का एक ऐसा ज़ोरदार कार्य-क्रम होना चाहिए जिससे कि जाति-प्रथा के इस कार्य-निर्वाह का स्वरूप सामने आए जोकि एक समय उपयोगी रहा है और आज की स्थिति में इसकी अनौचित्य को स्पष्ट सिद्ध करे।

एक और कारण जो जाति-प्रथा को स्थायित्व प्रदान कर रहा है वह भारतीय समाज में सामान्य सांस्कृतिक आदर्श और प्रचलनों की कमी। क्यों कि विभिन्न जातियों में परस्पर कोई आदान-प्रदान नहीं हुआ इसलिए हरेक को पृथक-पृथक रूचियाँ और सांस्कृतिक विशेषताएं विकसित हुईं। विभिन्न जातियों के सांस्कृतिक विकास की विषमता भी एक समस्या है प्रौढ़-शिक्षा के अन्तर्गत एक ऐसा कार्य-क्रम बनाना होगा जिसके द्वारा विभिन्न जातियों के सामान्य सांस्कृतिक तत्व प्रकट हों। और उनके सांस्कृतिक स्तर की विषमताएं समाप्त हों। उदाहरण के रूप में भिन्न भिन्न जातियों के धार्मिक क्रिया-कांड भिन्न-भिन्न होते हैं। वांछनीय होते हुए भी इन क्रिया-कांडों को एक दम हटाना हो सकता है कि सम्भव न हो। प्रयत्न इस बात का होना चाहिए कि

उनके पालने में किसी प्रकार की समानता लाई जाए कि जिससे असमानता की भावनाएं समाप्त हों।

भारत में प्रौढ़-शिक्षा को जो सामाजिक शिक्षा का नाम दिया गया है वह भी बिना महत्व की बात नहीं है। इस आन्दोलन के इतिहास के सर्वेक्षण से पता चलेगा कि यह आन्दोलन प्रत्यक्ष रूप से अधिकांश में सामान्य जनता में उन मूल्यों के भरने से सम्बन्धित रहा है जो लोगों को साम्प्रदायिक विचारों के संकीर्ण घेरे से निकालें और उन्हें एक सामाजिक दृष्टि प्रदान करें।

अब मूल कार्य सामाजिक शिक्षक का है। जाति-भेद की प्रथा के सम्बन्ध में लोगों के मन में जो सन्देह है वह अस्पष्ट और विचित्र है। प्रचलित विचार वे हैं जो उसे बुरा समझते हैं। यह सामाजिक-शिक्षा शास्त्रियों का काम है कि वे लोगों में वह भावना जागृत करें जिससे वे आज की स्थिति में जाति-प्रथा के औचित्य और उपयोगिता के बारे में प्रश्न कर सकें। उन्हें चाहिये कि वे जनता के परिक्षण को यह समझने में मदद करे कि जाति-भेद की प्रथा की क्यों निन्दा की जाती है और वह स्थिति उत्पन्न करें जिसमें इस विषय में बिना किसी हिंसात्मक उपद्रवों और रक्तपात की चर्चा की जा सके। सामाजिक शिक्षा-शास्त्री के पास उसके लिये साधन हैं, उसे केवल अपने इस विचार के सामने समस्या को लाना है। कुछ भी हो उसे अपने मन में स्पष्ट होना है और अपने कार्यों और कार्य-क्रमों द्वारा जाति-भेद के विषय में अपनी सजगता प्रगट करनी है।

नई संस्कृति के लिए समाज-शिक्षा

इस प्रकार समाज-शिक्षा शास्त्री के काम का पूरा स्वरूप निर्धारित हो जाता है। वह एक ऐसे सामाजिक-व्यवहार और सामाजिक मूल्यों के प्रचलन के ढाँचे के बनने में मदद देगा जिससे लोगों को उन्नति करने और ऐसे समाज की स्थापना करने में मदद मिलेगी। जो अवसर की समानता और विचार तथा कार्य-स्वातन्त्र्य के आधार पर खड़ा हो। वह ऐसे समाज के लिये अवश्यक प्राविधिक विज्ञान सम्बन्धी परिवर्तनों को ग्रहण करने के लिये मानव-मस्तिष्क को तैयार करेगा। देश में जो नया समाज बन रहा है उसकी सांस्कृतिक आवश्यकताओं के विकास में मदद देगा। एक पुराने और महत्व-पूर्ण मुहावरे

के अनुसार वह स्वन्त्र और प्रसन्न लोगों की नई विश्व-व्यवस्था का अग्रदूत होगा।

इस रूप में प्रौढ़-शिक्षा कार्य-कर्त्ता का कदाचित् बहुत बड़ा काम होगा, और इसी कारण वह कार्य कठिन किन्तु सृजनात्मक होगा। उसके कार्य-कलाप को अपनी परिधि में मानव-जीवन के सभी भागों को लेना होगा, और एक और दूसरे भाग के मध्य की असंगतता को दूर करना होगा तथा एक संयुक्त दृष्टि द्वारा उनके बीच समन्वय एकत्रित करना होगा। इस प्रकार प्रौढ़-शिक्षा द्वारा मानव जाति के मस्तिष्कों को नये साँचे में ढालने का काम कठिन किन्तु उल्लास-पूर्ण है। हमें अपने आपको भाग्यशाली मानना चाहिये कि हम इस साहसिक कार्य में साझी हैं।

प्रौढ़-शिक्षा कार्यकर्त्ता इस कार्य को करने के लिये अपने आपको किस प्रकार साधन-सज्जा से मुक्त करेगा? सबसे पहले उसे काम के परिमाण को और इस सारी प्रक्रिया के सामान्य रूप को समझना होगा। जिसमें उसे महत्त्व-पूर्ण भाग लेना है। इससे अधिक उसे अपने को उस प्रक्रिया का एक भाग समझना होगा और अपने को उसी तर्क के नीचे मानना होगा जिसके मार्ग को बदलने का वह प्रयास कर रहा है और निर्देशन दे रहा है। उसे अपने निजी जीवन में और अन्य व्यक्तियों के साथ अपने सम्बन्ध में उसी व्यवहार-संहिता को अपनाना होगा। जिसका वह समाज द्वारा अपनाया जाना चाहता है। यदि आन्दोलन के पीछे एक सच्ची लोकतंत्री भावना ही तो वह उसके जीवन में, उसके अपने साथियों के साथ और उन व्यक्तियों के साथ व्यवहार में प्रगट होनी चाहिये, जो उसके सम्पर्क में आते हैं। सिद्धान्त और आचरण तथा विचार और कार्य के बीच असमानता भारतीय मस्तिष्क की निरन्तर बीमारी रही है। कदाचित् इसका एक बड़ा कारण यह रहा है कि सामाजिक—आर्थिक विवशताओं ने अधिकांश लोगों की नैतिक महत्त्वाकांक्षाओं को ख़त्म कर दिया। सामुदायिक विकास का उद्देश्य इन विवशताओं को ख़त्म करना है। यह प्रौढ़-शिक्षा शास्त्री का काम है कि वह लोगों को पुनः विशाल और व्यापक दृष्टि दिलाए और उनकी नैतिक महत्त्वाकांक्षाओं को उदार बनाए। इस महान् कार्य के प्रति सजगता द्वारा इस आन्दोलन का मार्ग दर्शन होना चाहिये। मुझे विश्वास है कि भारत में यह आन्दोलन काफी विकसित हो चुका है, और वह अपने काम को कर सकेगा, जो इतिहास ने उसे सौंपा है।

एस. सी. दत्ता

INDIAN JOURNAL OF ADULT EDUCATION

Quarterly Journal

Contains articles by eminent national and international experts on adult education.

Subscription—Rs. 5/- Yearly ; Single copy Re. 1/4

Free to Members

Published by

The Indian Adult Education Association

30, Faiz Bazar,

Delhi

LATEST

UNESCO PUBLICATION IN HINDI

PRAUDH SHIKSHA (Aadhunik Vichardharyen Va Prayog) ... Rs. 2 0 0
AADHARBHOOT SHIKSHA (Nirupan Aur Karyakram) ... Rs. 1 10 0

Usual discount to members of IAEA

Can be had from :

Indian Adult Education Association

30, Faiz Bazar,

Delhi

INDIAN ADULT EDUCATION ASSOCIATION

LIST OF PUBLICATIONS

1.	First National Seminar Report on the Organisation and Techniques for the Liquidation of Illiteracy.	2	8	0
2.	Second National Seminar Report on the Organisation of Community Centre. ...	2	8	0
3.	Third National Seminar Report on Preparation of Literature for Neo-Literates. ...	3	8	0
4.	Fourth National Seminar Report on Training of Social Education Workers. ...	3	8	0
5.	Social Education Literature. ... by—Dr. S. R. Ranganathan.	10	8	0
6.	Indian Adult Education Association ... "What it is and what it does" ?	1	0	0
7.	Rural Adult Education in India ... by—Dr. S. R. Ranganathan.	1	0	0
8.	Training in Social Education. ... by—M. C. Nanavatty.	3	0	0
9.	"Indian Journal of Adult Education". ... A quarterly Journal (Yearly Subs :)	5	0	0
10.	"Social Education News Bulletin". ... A Monthly Bulletin (Yearly Subs :)	3	0	0
11.	Revised Edition of "Education for Leisure" by—Dr. S. R. Ranganathan.	5	0	0
12.	Place of Recreation in Social Education ...	1	8	0
13.	Directory of Adult Education Agencies and Workers.	5	0	0
14.	Shaksharta Prasar Tatha Biradari Gharon ki Vyavastha (Hindi)	0	12	0
15.	Samaj Shiksha Karyakartaon Ki Samasya Aur Yen Ka Hal (Hindi) ...	1	8	0
16.	Navshikist Praudho Ke Liye Sahitya Ka Nirman (Hindi)	1	8	0
17.	Samaji Shiksha Path Pradarshika (Hindi)	1	0	0
18.	Janta College Ki Vyavastha Aur Karye ...	0	8	0
19.	The National Seminar Report on the Organisation of Recreational and Cultural Activities in Social Education.	2	8	0
20.	Sixth National Seminar Report on "Role of Libraries in Social Education"	3	8	0
21.	Praudh Shiksha—Adhunik Vichardharayen Va Prayog	2	0	0
22.	Aadharbboot Shiksha—Nirupan Aur Karyakram.	1	10	0
23.	Adult Education in Community Development	1	8	0

Can be had from :

Indian Adult Education Association,

30, Faiz Bazar, DELHI.

University Press, University Buildings, Delhi 8.